आम्बेडकर जन्म शताब्दी
विशेषांक

सामाजिक न्याय : कितना व्यावहारिक

सामाजिक न्याय का वर्ष

उपेन्द्र नाथ वर्मा
केन्द्रीय ग्रामीण विकास राज्य मंत्री
भारत सरकार, नई दिल्ली

भारत सरकार ने 14 अप्रैल, 1990 से 14 अप्रैल, 1991 की अवधि तक भारतीय संविधान के जनक एवं दलितों के मसीहा डा. भीमराव आम्बेडकर की जन्म-शताब्दी को 'सामाजिक न्याय वर्ष' के रूप में मनाने का निर्णय लिया है। बाबा साहेब सदियों से उत्पीड़ित, उपेक्षित तथा शोषित देश के करोड़ों लोगों को सामाजिक और आर्थिक न्याय दिलाने के लिए जीवन भर लड़ते रहे ताकि वे सम्मान के साथ इज्जत की जिन्दगी जी सकें।

डा. आम्बेडकर का संघर्ष पीने के पानी से शुरू हुआ था। जब वे एक तालाब पर पानी पीने गए तो उन्हें पानी नहीं पीने दिया गया था। उन्होंने कहा था कि जहां जानवर पानी पी सकता है वहां इंसान को पानी पीने क्यों नहीं दिया जाता? दलितों की लगभग ऐसी ही स्थिति सारे देश में थी। उन्हीं दलितों को सामाजिक न्याय दिलाना डा. आम्बेडकर के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है।

भारतीय लोकतंत्र में डा. भीमराव आम्बेडकर का योगदान अविस्मरणीय है। संविधान समिति के अध्यक्ष के नाते उन्होंने देश को बालिग मताधिकार पर आधारित एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य का स्वरूप दिया है। हमारा संविधान धर्मनिरपेक्ष है, समाजवादी है। मौलिक अधिकारों के प्रावधान के साथ उसमें छुआछूत को हमेशा के लिए खत्म करने सम्बन्धी धारायें जुड़ी हैं। संविधान की धारा 15 और 16 में सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है ताकि सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थाओं में उनके लिए जगहें सुरक्षित की जा सकें। भारतीय समाज की बनावट और उसमें आई गिरावट का गहरा और विस्तृत अध्ययन करने के बाद उन्होंने बुराइयों को ढूंढ निकाला था और उसका इलाज भी बता दिया। सताये गए लोगों को विशेष सुविधा देने की संवैधानिक व्यवस्था कर उन्होंने समाज के एक बड़े हिस्से को देश के नव-निर्माण में योगदान के लिए अवसर प्रदान किया है।

(शेष आवरण III पर)

वर्ष—35, अंक 12, अश्विन-कार्तिक, शक-1912

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

सम्पादक : राम बोध मिश्र
सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल लूथरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा

विज्ञापन प्रबंधक : बैजनाथ राजभर
व्यापार व्यवस्थापक : जसवंत सिंह
सहायक व्यापार व्यवस्थापक : शकुन्तला
सहायक उत्पादन अधिकारी : सुनील कौड़ा

आवरण पृष्ठों की
साज सज्जा : आशा सक्सेना
चित्र : फोटो प्रभाग

वार्षिक चंदा : 30 रु.

विषय सूची

उपेक्षित वर्ग को न्याय देना होगा — 3
डा. एन. जे. कुरियन
सामाजिक न्याय के मार्ग में बाधाएं — 7
जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी
आम्बेडकर जन्मशती और सामाजिक न्याय : दशा एवं दिशा — 12
रामजी प्रसाद सिंह
सामाजिक न्याय की प्राप्ति : मंजिल अभी दूर है...! — 16
डा. मुन्नीलाल विश्वकर्मा
डा. भीमराव आम्बेडकर और समता का सपना — 21
मस्तराम कपूर
सामाजिक अन्याय के चक्रव्यूह भेदक अभिमन्यु की तलाश — 25
डा. हरिवल्लभ त्रिवेदी
सामाजिक न्याय—कितना वास्तविक (रिपोर्ट) — 29
प्रस्तुति—ओम प्रकाश दत्त
भारत में सामाजिक न्याय—एक विश्लेषण — 33
डा. गिरिजा प्रसाद दुबे
सामाजिक न्याय और हमारी व्यवस्था — 38
बलराज मेहता
सामाजिक न्याय : सच्चाई क्या है? — 41
स्वामी अग्निवेश
सामाजिक न्याय—कल्पना या यथार्थ — 46
देवेन्द्र उपाध्याय
सामाजिक न्याय के प्रखर प्रवक्ता—डा. आम्बेडकर — 49
वेद प्रकाश अरोड़ा
सामाजिक न्याय का यथार्थवादी आकलन — 53
सुबह सिंह यादव
सामाजिक न्याय : यथार्थ और कल्पना — 59
धर्मेन्द्र त्यागी
सामाजिक न्याय—कुछ विचारणीय मुद्दे — 63
डा. सी. एम. चौधरी
आर्थिक और सामाजिक न्याय का तकाजा — 67
बलवन्त सिंह हाड़ा
समता एवं सामाजिक न्याय के मसीहा : डा. आम्बेडकर — 71
आशा शर्मा
पिछड़ी जातियां एवं सामाजिक न्याय — 74
जे. पी. यादव
सामाजिक न्याय : समानता व समभाव पर आधारित हो — 77
मानसिंह 'मान'
डा. आम्बेडकर और सामाजिक न्याय — 82
रमेश चन्द्र
युगदृष्टा : डा. आम्बेडकर — 84
प्रो. लक्ष्मीनारायण दुबे
सार्थक दीवानी — 86
विनय जोशी
सामाजिक न्याय-प्रयास और कमियां — 87
भूपेन्द्र नाथ मिश्र

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष : 384888

संकल्प के साथ आगे बढ़ना होगा...

14 अप्रैल, 1990 को बाबा साहेब भीमराव आम्बेडकर के जन्मशताब्दी समारोहों के अवसर पर प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने घोषणा की थी कि उनके शताब्दी वर्ष को 'सामाजिक न्याय वर्ष' के रूप में मनाया जायेगा। इस घोषणा में यह स्वीकारोक्ति निहित थी कि आजादी के 43 वर्ष बाद भी सामाजिक अन्याय एक गंभीर समस्या बनी हुई है। इसमें सन्देह नहीं कि देश में विशेषकर ग्रामीण इलाकों में गरीबों और दलितों की विशाल जनसंख्या की पीड़ा और संत्रास का मुख्य कारण उनका आर्थिक पिछड़ापन है। सात पंचवर्षीय योजनाओं और ग्रामीण क्षेत्र में भारी पूंजी निवेश के बावजूद ग्रामीण आबादी के जीवन स्तर में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आ पाया है। वर्ष 1987-89 के लिए अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त की रिपोर्ट में भी इस बात पर गहरी चिंता प्रकट की गई है कि हमारे समाज के सबसे निचले वर्ग अर्थात अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की स्थिति तेजी से बदतर होती जा रही है। रिपोर्ट में सरकार को सावधान किया है कि देश में समूची आर्थिक व्यवस्था जिस दिशा में अग्रसर है उसके कारण असमानता कम होने की बजाय बढ़ी है और बढ़ती जा रही है। सवाल उठता है कि कहां गड़बड़ है? कहां कमी रह गई है? क्या हम आर्थिक नियोजन के ज़रिये ठीक दिशा में जा रहे हैं? ऐसे अनेक सवाल हमारे सामने उठ खड़े हुए हैं।

कुरुक्षेत्र ने डा. आम्बेडकर के जन्मशताब्दी वर्ष के अवसर पर सामाजिक अन्याय की समस्या पर ध्यान दिलाने और इस समस्या से उपजे सवालों के जवाब तलाशने की कोशिश की है। इस अंक में प्रसिद्ध समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों ने समस्या के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं पर विचार करते हुए अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किये हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि जाति वर्ग, धर्म भेद आदि के कारण अन्याय से हमारा समाज त्रस्त रहा है। जात-पात ने हमारे सामाजिक ताने-बाने को कमजोर बनाया। इनके कारण पूरी सामाजिक व्यवस्था में गिरावट आई और समाज के अधिसंख्य वर्ग को सदियों से उपेक्षित और आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा रखा गया। शोषण और दमन पर आधारित इस व्यवस्था में अधिसंख्य लोगों की घोर गरीबी और दुर्दशा बढ़ती रही, दूसरी ओर समाज का एक सीमित वर्ग इनके खून-पसीने के बल पर फलता-फूलता रहा। यह स्थिति समाज में तनाव, अशांति और कई बार सामाजिक उथल-पुथल का कारण बनी। आज भी शोषक वर्ग इस दमनकारी और शोषणकारी व्यवस्था को तमाम तरह के हथकंडे अपनाकर कायम रखे हुए है।

ऐसी स्थिति में आम्बेडकर जन्मशताब्दी वर्ष को सामाजिक न्याय वर्ष के रूप में मनाना तभी सार्थक हो सकेगा जब लाखों-करोड़ों देशवासियों के लिए सामाजिक न्याय वास्तव में अर्थपूर्ण बनेगा और वे इसके बल पर सम्मान का और समानता पर आधारित जीवन बिता सकेंगे। सामाजिक न्याय की प्राप्ति कठिन जरूर है, असंभव बिल्कुल नहीं। इसके लिए केवल संकल्प की आवश्यकता है। समुचित आर्थिक और सामाजिक नीतियों, कार्यक्रमों की आवश्यकता है। सरकार ने जिस संकल्प और प्रतिबद्धता का परिचय दिया है उससे आशा बन्धी है कि सामाजिक न्याय का लक्ष्य हम अन्ततः प्राप्त कर लेंगे। अगर ऐसा हो सका तो यह युगपुरुष बाबा साहेब आम्बेडकर के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

—सम्पादक

उपेक्षित वर्ग को न्याय देना होगा

डा. एन. जे. कुरियन
निदेशक, ग्रामीण विकास विभाग
नई दिल्ली

लेखक के अनुसार हमारे देश में जाति प्रथा और अस्पृश्यता सबसे भयंकर सामाजिक कुरीतियां हैं। इनके कारण भारतीय समाज बंटा रहा है और विदेशी आक्रमणकारियों ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया। एक हजार वर्षों तक विदेशी शासन के अधीन रहने के बावजूद हम एक नहीं हो पाए। स्वाधीनता के बाद हमने नियोजित विकास की प्रक्रिया अपनाई लेकिन भूमि सुधार जैसे उपायों के बावजूद हम आशा के अनुसार उपलब्धियां हासिल नहीं कर पाए हैं। इन सुधारों और सुविधाओं का लाभ अधिकांशत: समाज के पहले से ही सुविधा सम्पन्न लोगों को मिला और गरीब तथा उपेक्षित वर्ग पीछे रह गया। लेखक का मत है कि गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम भी आर्थिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में अधिक प्रभावी नहीं हो पाए। न्याय के मामले में विसंगतियां बनी हुई हैं। न्याय न केवल महंगा है बल्कि देर से मिलता है जिस कारण गरीबों को अत्यधिक कठिनाई होती है। लेखक का कहना है कि कमजोर वर्गों को संगठित करना होगा ताकि वे अन्याय का मुकाबला कर सकें और अपने जायज अधिकारों को प्राप्त कर सकें।

प्राचीन यूनान तथा रोम में लोग अपने यहां बड़ी संख्या में दास रखते थे और उनसे कड़ी मेहनत वाले काम कराते थे। इन लोगों को दास-प्रथा में कुछ भी बुरा नहीं लगता था कारण यह था कि दास लोग यूनानी अथवा रोमन नहीं होते थे। अमरीका में भी दास प्रथा पिछली शताब्दी के छठे दशक तक प्रचलित थी और अफ्रीकियों को गुलाम रखकर उनसे बड़ी क्रूरता से काम लिया जाता था। यह प्रथा अब्राहम लिंकन के सतत् प्रयासों तथा गृह युद्ध के बाद ही समाप्त हो सकी। हमारे देश में छूआछूत हजारों वर्षों से चली आ रही है। संविधान में उस कुप्रथा को समाप्त कर दिया गया था। इस संबंध में हमारे संविधान निर्माता बाबा साहेब भीमराव आम्बेडकर ने अहम् भूमिका अदा की। डा. आम्बेडकर ने भारतीय समाज में शोषितों, दलितों, उपेक्षितों के पक्ष में जोरदार आवाज उठायी और पूरा जीवन समाज में व्याप्त बुराइयों के विरुद्ध संघर्षरत रहे। इस वर्ष को उनके जन्मशती वर्ष के रूप में मनाकर, देश उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है।

हमारे देश में सभी महान समाज सुधारकों का मुख्य जोर इस बात पर रहा है कि समाज में व्याप्त बुराइयों तथा अन्याय, उत्पीड़न को जड़ से समाप्त किया जाए। गांधीजी ने समाज सुधार पर बार-बार बल दिया। उनका कहना था कि सामाजिक न्याय के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है। हमारे देश में उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दी में लगभग सभी समाज सुधारक समाज के उच्च वर्ग से थे, परन्तु बाबा साहेब आम्बेडकर समाज के सबसे निचले वर्ग से थे। परन्तु वे प्रखर बुद्धि, संवेदनशील व्यक्तित्व थे। वे स्वयं समाज में व्याप्त और असमानता, उत्पीड़न तथा उपेक्षा का शिकार रहे

थे। इसलिए उन्होंने सामाजिक अन्याय के विरुद्ध पूरी ताकत से संघर्ष किया। वे समाज में तमाम दमनकारी तत्वों के घोर विरोध का प्रतीक बन गए।

जाति प्रथा

हमारे समाज में अनेक कुरीतियां तथा अन्यायपूर्ण प्रथाएं व्याप्त हैं लेकिन अस्पृश्यता इनमें सबसे भयंकर है। यद्यपि परम्परा के अनुसार जाति प्रथा हिन्दू जाति का ही एक अंग थी लेकिन यह अधिकांशतः एक सामाजिक व्यवस्था थी और धार्मिक मान्यता नहीं थी। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि भारत में सभी धर्मों अथवा मतों के लोग किसी न किसी रूप में जाति प्रथा को मानते रहे हैं। प्राचीन काल के समाज में जाति प्रथा का आधार अथवा उपयुक्तता कुछ भी रही हो लेकिन आज सबकी समानता, स्वतंत्रता पर आधारित आधुनिक युग में इस तरह के भेदभाव को कोई स्थान नहीं है। यह तर्क दिया जाता है कि प्राचीन काल में जाति प्रथा, समाज में विभिन्न कार्यकलापों के आधार पर तय की गयी थी लेकिन यह वर्गीकरण कालांतर में चलकर जन्मजात बनकर लोगों के लिए ठप्पा बना दिया गया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि जन्म के आधार पर ही जाति वर्गीकरण होने लगा और इसमें किसी भी आधार पर इधर-उधर होने की कोई गुंजाइश ही नहीं छोड़ी गयी। अगर ब्राह्मण वंश में पैदा हुआ व्यक्ति वज्रमूर्ख भी था, अथवा क्षत्रिय परिवार में जन्मा कोई कृशकाय भी था तो भी उसे उस वर्ग का दीपक माना जाता था लेकिन हरिजन परिवार में जन्मा कुशाग्र बुद्धि हृष्ट-पुष्ट बालक नीच वर्ग के दास के अतिरिक्त कुछ नहीं समझा जाता था। जन्म से ही उसे समाज के निचले स्तर पर ही पड़ा रहने को बाध्य रखा जाता था। एकलव्य इसका एक ज्वलंत उदाहरण है।

हमारे समाज में गौतम बुद्ध से लेकर स्वामी विवेकानन्द तक सभी विचारकों, धर्माचारियों, दार्शनिकों, महान आत्माओं ने जाति प्रथा के विरुद्ध लोगों में चेतना जगाने के अथक प्रयास किए परन्तु इन्हें सीमित सफलता ही मिल पायी। इसी कारण हमारा समाज विभिन्न वर्गों में बंटा रहा जिसका लाभ उठाकर विदेशी आक्रमणकारी हम पर आसानी से विजय पाकर हमारे शासक बन बैठे। एक हजार साल के विदेशी शासन के बावजूद हम वर्ग तथा जाति भेद की बुराई को दूर नहीं कर पाए और स्वाधीनता प्राप्ति तथा संविधान में निषेध के बावजूद आज भी समाज में जाति प्रथा किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

समाज में उपेक्षित नारी

अस्पृश्यता और अन्य सामाजिक कुरीतियों के अलावा हमारे समाज में स्त्रियों की उपेक्षा, उत्पीड़न तथा शोषण चिंता का एक अन्य विषय रहा है। डेढ़ सौ वर्ष पूर्व सती प्रथा को कानूनी तौर पर समाप्त करने के बावजूद आज भी हमारे देश में सती प्रथा को महिमा मंडित करने वाले लोग बड़ी संख्या में मौजूद ही नहीं है बल्कि स्त्रियों के सती होने की घटनाएं भी होती रहती हैं। हमारे समाज में स्त्री जन्म से ही उपेक्षा का पात्र बनती है। समाज में विधवाओं का जीना दूभर नहीं तो कठिन अवश्य है। लड़की की तुलना में लड़के का जीवन आराम तथा देखभाल से अधिक परिपूर्ण होता है। शिक्षा, भोजन, स्वास्थ्य देखभाल, लाड़-प्यार, निगरानी छूट, विवाह, पारिवारिक बंधन, आचार-व्यवहार—हर मामले में स्त्री बंधनों, मर्यादाओं, सीमाओं में जकड़ी रहती है। इसी कारण देश में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या घटती जा रही है। स्त्रियों में साक्षरता दर उतनी भी नहीं है जितनी पुरुषों की कुल आबादी के आधे भाग में है। सभी विकसित देशों में पुरुषों की संख्या स्त्रियों से कम है लेकिन 1981 के आंकड़ों के अनुसार भारत में प्रत्येक 1000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या केवल 933 है। केरल राज्य में स्त्रियों की संख्या अधिक है। वहां साक्षरता की दर भी सबसे अधिक है तथा बाल मृत्यु दर सबसे कम है। दक्षिणी तथा तटीय प्रदेशों आदिवासी तथा पर्वतीय समाज में स्त्रियों के साथ भेदभाव कम होता है।

जीवन के आर्थिक-सामाजिक क्षेत्रों में स्त्रियों का दर्जा पुरुषों की तुलना में कम है। स्त्रियों का अधिकांश समय ईंधन, चारा, पानी जुटाने तथा रसोई के काम में चला जाता है। घर-परिवार की देखभाल का सारा बोझ उन पर होता है। बाहर कामकाज में स्त्रियों को पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी मिलती है। संगठित क्षेत्र में कामकाजी स्त्रियों की संख्या मात्र 14 प्रतिशत है। इनका सबसे अधिक 35 प्रतिशत केरल में और सबसे कम प्रतिशत बिहार में है। संगठित क्षेत्र में उच्च पदों पर स्त्रियों की संख्या गिनती की है। पिछले अनेक वर्षों से समाज के विभिन्न क्षेत्रों में प्रमुख स्थानों पर स्त्रियों के अनुपात में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई है। संसद तथा विधानमंडलों में महिला सदस्यों की संख्या में लगातार कमी आई है।

पक्षपात का सबसे अधिक शिकार

स्त्रियों के साथ भेदभाव, दहेज, सती जैसी सामाजिक बुराइयों की जड़ है स्त्रियों का सम्पत्ति संबंधी अधिकार। इन भेदभावपूर्ण सामाजिक कुरीतियों का कारण स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता है जिसे दूर किए बिना स्त्रियों का शोषण जारी रहेगा। विवाह से पहले और विवाह के बाद भी स्त्री त्यागमूर्ति बनी रहती है। स्त्री की इस स्वभावगत विवशता का पुरुष खूब लाभ उठाता है। दहेज के कारण होने वाली मौतों की

घटनाएं भी बढ़ती जा रही हैं। ज्यों-ज्यों समाज आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है, पुरुष-प्रधान समाज का भौतिक साधनों के प्रति लालच भी बढ़ रहा है। जिसके कारण अनेक स्त्रियों को प्रताड़ना सहनी पड़ती है।

आर्थिक स्वतंत्रता के बिना आजादी निरर्थक है। समाज में अनेक अन्यायपूर्ण परिस्थितियां आर्थिक निर्भरता के कारण जन्म लेती हैं और शोषण को बढ़ावा देती हैं। आर्थिक नियोजना के जरिये विकास का एक मुख्य उद्देश्य यह था कि आम लोग आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बन सकें। शोषण तथा सामाजिक न्याय से मुक्ति पा सकें। भूमि सुधार उपायों तथा कृषि विकास व औद्योगिक पूंजी निवेश उपायों के पीछे उद्देश्य यह था कि गरीबों, बेरोजगारों को परिसम्पत्ति जुटाने, आय बढ़ाने तथा रोजगार पाने के अवसर उपलब्ध हो सकें। लेकिन इनमें आशा के अनुरूप सफलता नहीं मिली। भूमि सुधारों के जरिये भूमि का पुनर्वितरण कम हो गया है। अधिकांश सुधारों, उपायों, सुविधाओं का लाभ समाज के पहले से ही सुविधा सम्पन्न वर्ग ने उठाया तथा पिछड़े, गरीब लोग पीछे रह गए। हरित क्रांति का लाभ केवल कुछ प्रदेशों तक सीमित रहा है तथा ग्रामीण समाज के अधिकांश लोग विकास के लाभ से वंचित रह गए। उद्योग क्षेत्र के धीमे विकास के कारण इस क्षेत्र में मजदूर बड़ी कम संख्या में खप पाए हैं। लाखों-करोड़ों देशवासी विकास प्रक्रिया से अछूते रहे हैं, वे न तो इसमें कुछ योगदान कर पाए हैं और न ही इसमें सहभागी, लाभान्वित बन पाए हैं।

व्यापक गरीबी

1970 के दशक तक यह स्पष्ट हो गया था कि पूर्ववर्ती दो दशकों के नियोजित विकास के बावजूद देश की आधे से अधिक जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बिता रही है। इनमें से अधिक संख्या में लोग गांवों में रहते हैं और छोटे तथा सीमान्त किसान, खेत मजदूर तथा कारीगर हैं। आठवें दशक के अंत तक चलाए गए विभिन्न रोजगार आय संवर्धक, आवश्यकतापूर्ति कार्यक्रमों के फलस्वरूप गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बिताने वाले लोगों की संख्या कम होकर कुल आबादी का एक तिहाई रह गयी है। फिर भी, गरीबों की यह संख्या अत्यधिक है। अधिकांश निर्धन आबादी आर्थिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में है। इसका मुख्य कारण यह है कि विभिन्न अंचलों में आर्थिक विकास का स्वरूप एक जैसा नहीं रहा। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम अक्षम प्रशासन मूल सुविधाओं के अभाव के कारण प्रभावी नहीं हो पाए। इस प्रकार गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम से भी संभवत: क्षेत्रों के बीच असमानता कम होने की बजाय बढ़ गयी है।

साक्षरता: निर्धन का सपना

समाज का जीवन स्तर केवल आय की औसत पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि बहुत हद तक इस बात पर निर्भर होता है कि साक्षरता दर कितनी है, स्वास्थ्य सेवाओं की सुविधा कहां तक उपलब्ध है। हमारे देश में साक्षरता दर तथा स्वास्थ्य देखभाल सेवाएं अपर्याप्त हैं और विभिन्न क्षेत्रों विशेषकर शहर और देहात के बीच काफी असंतुलन भी है। इसके अलावा जहां प्राथमिक शिक्षा के लिए समुचित संसाधनों का प्रबन्ध नहीं किया गया है वहीं उच्च शिक्षा के लिए भरपूर खर्च किया जाता है। स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा का लाभ गरीबों तथा कमजोर वर्गों को नहीं मिल पाता। इस तरह शिक्षा नीति में विसंगतियां एकदम स्पष्ट हो जाती हैं। यही हाल स्वास्थ्य सेवाओं का भी है। हमारे यहां स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति खर्च दुनिया में सबसे कम होता है। प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च कम होता है, रोगों की रोकथाम तथा रोगों से संरक्षण उपायों के लिए पर्याप्त संसाधन व्यवस्था नहीं होती लेकिन शहरों में स्थित बड़े चिकित्सा संस्थानों पर भारी धनराशि खर्च की जाती है। क्षेत्रों में प्राय: स्कूलों में सुविधाएं नाम मात्र की हैं। हालांकि देहात में स्कूलों की संख्या बढ़ी है और स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या भी बढ़ी है लेकिन यह भी सच है कि घरेलू तथा आर्थिक कारणों से पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले बच्चों की संख्या भी बढ़ी है। एक तरफ साक्षरता बढ़ रही है तो दूसरी ओर निरक्षरों की संख्या भी जनसंख्या वृद्धि के कारण बढ़ती जा रही है। प्रत्येक बच्चे को कम से कम प्राथमिक शिक्षा देने का लक्ष्य अभी प्राप्त होता दिखायी नहीं देता। प्राथमिक शिक्षा पर पर्याप्त बल के अभाव का सबसे बुरा असर सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों तथा स्त्रियों पर पड़ रहा है। लड़कियों को शिक्षा न देने की प्रवृत्ति परिवार नियोजन तथा अन्य सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति में मुख्य बाधा हुई है। करीब 40 प्रतिशत से अधिक लड़कियां प्राथमिक शिक्षा भी पूरी नहीं ले पातीं। कई प्रमुख राज्यों में यह औसत 60 प्रतिशत तक है। इस कल्पना से मन आशंकित हो उठता है कि यही लड़कियां इक्कीसवीं सदी में अशिक्षित महिलाएं होंगीं।

महंगा, देर से मिलता न्याय

हमारे देश में न्याय न केवल महंगा ही है बल्कि इसे लेने में भी बड़ी देर लग जाती है। अदालतों में हजारों लाखों मुकदमें वर्षों तक लंबित पड़े रहते हैं और न्याय मिलने में जितनी देरी होती है उसके अंतत: मिलने का सुख जाता रहता है। हमारे यहां कानूनी सहायता भी बड़ी महंगी, खर्चीली है। इस कारण अधिकांश गरीब, कमजोर वर्ग न्याय से वंचित रह जाते हैं।

(2) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई नागरिक—

(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश के; अथवा

(ख) पूर्ण या आंशिक रूप से राज्य-निधि से पोषित अथवा साधारण जनता के उपयोग के लिये समर्पित कुंओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों तथा सार्वजनिक समागम स्थानों के उपयोग के बारे में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्बन्धन अथवा शर्त के अधीन न होगा।

(3) इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिये कोई विशेष उपबंध बनाने में बाधा न होगी।'

इसके आगे सरकारी सेवाओं के सम्बंध में समानता प्राप्त करने के लिए प्रावधान किया गया—

"(1) राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के सम्बंध में सब नागरिकों के लिये अवसर की समता होगी।

(2) केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्म-स्थान, निवास अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक के लिये राज्याधीन किसी नौकरी या पद के विषय में न तो अपात्रता होगी और न विभेद किया जायेगा।

(3) इस अनुच्छेद की किसी बात से संसद् को कोई ऐसी विधि बनाने में बाधा न होगी जो प्रथम अनुसूची में उल्लिखित किसी राज्य के अथवा उसके राज्य-क्षेत्र में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन किसी प्रकार की नौकरी में या पद पर नियुक्ति के विषय में वैसी नौकरी या नियुक्ति के पूर्व उस राज्य के अन्दर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती हो।

(4) इस अनुच्छेद की किसी बात से राज्य को पिछड़े हुए किसी नागरिक वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्याधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिये उपलब्ध करने में कोई बाधा न होगी।

(5) इस अनुच्छेद की किसी बात का किसी ऐसी विधि के प्रवर्तन पर कोई प्रभाव न होगा जो उपबंध करती हो कि किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्था के कार्य से सम्बद्ध कोई पदधारी अथवा उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का अनुयायी अथवा किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का ही हो।"

इसके बाद जो मूल अधिकार लिखा गया, उसके द्वारा अस्पृश्यता का अंत किया गया और 17वें अधिकार में लिखा गया—

'अस्पृश्यता' का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। 'अस्पृश्यता' से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समता के अधिकार को हमारे संविधान में सबसे ऊंचा स्थान दिया गया है। उसी की प्राथमिकता है और बाद के अधिकार उस समता को प्राप्त करने के साधन मात्र हैं। इस दृष्टि से हमारा संविधान अमरीका के संविधान से भिन्न है। पहले अमरीका के उस संविधान में जो 1787 में 17 सितम्बर को स्वीकार हुआ था, किसी मौलिक अधिकार का जिक्र ही नहीं था। और जब 1791 के प्रथम संशोधन में मौलिक अधिकार प्रदान किये गये तो उनमें सबसे पहले धर्म की स्वाधीनता, फिर भाषण और प्रेस की स्वाधीनता तथा उसके बाद शांति पूर्वक सभा करने और शिकायतों को दूर करने के लिये सरकार से याचना करने का अधिकार दिया गया। भारतीय संविधान में भी ये अधिकार किसी न किसी रूप में हैं, पर उन सबसे पहले समता के अधिकार हैं जिनके द्वारा समता में यदि धार्मिक विचार भी बाधा डालते हैं तो उन्हें स्वीकार नहीं किया गया है।

समता के अधिकार के बाद संविधान में स्वतंत्रता का अधिकार है और उनके बाद शोषण के विरुद्ध अधिकार 23 व 24वें अधिकारों में वर्णित हैं और इन्हीं के बाद धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है जिसका उल्लेख मूल अधिकार 25, 26, 27 और 28 में किया गया है।

जहां तक सामाजिक न्याय का सम्बंध है, राज्य के नीति के निर्देशक तत्वों में उनका उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 38, 39(क) इसे इस प्रकार निरुपित करते हैं—'राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक कार्य-साधक रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक-कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।

'राज्य अपनी नीति का विशेषतया ऐसा संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से—

(क) सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो।'

सामाजिक न्याय को ध्यान में रखते हुए निर्देशक सिद्धांत-46 के अन्तर्गत इस बात का भी प्रावधान किया गया कि 'राज्य जनता के दुर्बलतर वर्ग के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बंधी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा तथा

सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकारों के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।'

भारतीय संविधान में इन विचारों को प्रकट करते समय भारतीय संविधान सभा ने स्वाधीनता से पूर्व राष्ट्र की आकांक्षाओं को संविधान में इकट्ठा किया। लेकिन जिन शब्दों में उन्हें रखा गया और जिस प्रकार उनका स्वरूप आज हमारे सामने है, उसके लिए यदि किसी एक व्यक्ति को श्रेय दिया जा सकता है तो वे मसौदा समिति के संयोजक डा. भीमराव आम्बेडकर थे, जिनकी देख-रेख में मसौदा समिति ने संविधान की इन धाराओं को लिखा ही नहीं बल्कि जिन्होंने अपने गहन अध्ययन और योग्यतापूर्ण विषय प्रतिपादन के बल पर इन धाराओं को संविधान सभा से स्वीकृत कराया। यह काम आसान नहीं था और संविधान सभा में चुनौतियां भी थीं। लेकिन डा. आम्बेडकर ने बड़ी योग्यता से यह कार्य संचालित किया और महात्मा गांधी तथा अन्य राष्ट्र नेताओं की इच्छा को संविधान का स्वरूप दिया।

यह सवाल अवश्य उठता है कि क्या हम संविधान द्वारा प्रकट की गयी इच्छाओं का पालन कर सके हैं। सामाजिक न्याय के क्षेत्र में यह शिकायत की जा सकती है कि जिस प्रकार के न्याय की कल्पना की गयी थी, वह पूरी नहीं हुई। परन्तु यह भारत की विशेषता नहीं है। आदर्श और उसकी उपलब्धि में कुछ अन्तर हर स्थान पर रहता है। लोकतंत्र से आज यूरोप खुश नहीं है और साम्यवाद सोवियत संघ और पूर्वी यूरोपीय देशों में अब चमत्कारी नहीं माना जाता। परन्तु भारत के बारे में यह तो निःसंदेह कहा जा सकता है कि कानून आज जाति, धर्म या जन्म के आधार पर एक भारतीय से दूसरे भारतीय में अन्तर नहीं करता। छुआछूत का जो प्रकोप पचास वर्ष पहले था, वह आज नहीं है और इसके बावजूद भी तनाव दिखाई देते हैं, यह स्वीकार करना पड़ेगा। स्वाधीनता के बाद जो जागृति आई है और पिछड़े लोगों में जो स्वाभिमान और स्वावलम्बन उदय हुआ है, उसके कारण अब तनाव उग्र दिखाई देते हैं। पहले जो केवल सहन करता था, वह आज अत्याचार सहन करने के लिए तैयार नहीं है और उसका जवाब देता है और इस प्रकार समाज को यह सोचने के लिए विवश कर देता है कि इनको आगे जारी रखना संभव नहीं होगा।

जिन लोगों ने पीढ़ियों में शिक्षा का नाम नहीं जाना था, वहां पर बालकों को पढ़ने का अवसर मिला है, उसका साधन मिला है और आज शिक्षा के द्वारा वे उच्च पदों पर पहुंच रहे हैं। यह ठीक है कि आज आर्थिक दृष्टि से जो वर्ग पिछड़े हुए हैं, उनके सामने सामाजिक बराबरी उतना अर्थ नहीं रखती जितना उन लोगों के लिए रखती है जो आर्थिक दृष्टि से एक स्तर पर हैं। परन्तु आर्थिक स्थिति में भी बहुत परिवर्तन हुए हैं। आज हाथ से काम करने वाले लोगों की मज़दूरी और वेतन बढ़े हैं और इससे उनमें आत्म-विश्वास आया है। जो काम अभी तक उनके लिए निषिद्ध था, वह सब काम करने के लिए वे तैयार हैं और उन्हें इसका अवसर भी मिलता है। अनुसूचित जातियों और जनजातियों से निकले हुए केवल विधायक और मंत्री ही हमें देखने को नहीं मिलते हैं, सभी सरकारी कार्यालयों में सरकारी कर्मचारियों की संख्या में सभी श्रेणियों में इन जातियों के अधिकारी काफी संख्या में आगे आ रहे हैं और कभी-कभी यह बताना भी नहीं भूलते कि उन्हें स्मरण है कि उनके पुरखों के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया गया।

भारत की बड़ी भारी जनसंख्या गांव में रहती है और खेती पर आश्रित है। स्वाधीनता से पहले दक्षिण भारत और महाराष्ट्र के कुछ इलाकों को छोड़कर शेष में भूमि का अधिकार मुट्ठी भर लोगों के हाथ में था और शेष उनकी मर्जी पर चलने वाले किसान थे। बंगाल, बिहार तथा बंगाल प्रेसीडेंसी के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में इस्तमरारी बन्दोबस्त यानी मालगुजारी भुगतान की स्थायी व्यवस्था थी। इसका अर्थ यह था कि जमींदार सरकार को वह मालगुजारी देता था जो लार्ड कार्नवालिस के जमाने में स्थिर हुई थी या उस समय जो मानदण्ड स्थापित किये गये थे, उनके आधार पर निरूपित होती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि जमींदारी की आय तो बढ़ती रही, पर देनदारी नहीं बढ़ी और उन्हें खेती के सुधार के लिये कुछ करने की आवश्यकता ही नहीं रही। फलस्वरूप जमींदार मालामाल हो नगरों में रहते और ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करते थे और उनके कारिन्दे गांव में किसानों पर जुल्म ढाते थे। अवध में ताल्लुकदारी प्रथा के अन्तर्गत किसानों की हालत बुरी थी और खेती पर उनका स्थायी अधिकार नहीं रहता था। उत्तर प्रदेश के दूसरे भागों में भी जमींदारी प्रथा विद्यमान थी। उत्तर प्रदेश की कुल 7.26 करोड़ एकड़ भूमि का 98 प्रतिशत जमींदारों के अधीन था जिसे 1951 में पारित जमींदारी उन्मूलन कानूनों के द्वारा समाप्त कर दिया गया। वहां पर किसानों को यह अधिकार भी दिया गया कि वे दस वर्ष का लगान देकर भूमिधर बन सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप एक तो उन्हें लगान आधा देना पड़ता है और दूसरे वे अपनी जमीन को बेच भी सकते हैं। परिणामस्वरूप इस राज्य के एक-तिहाई किसान भूमिधर बन गये, शेष को अपनी भूमि मारुसी रखने का अधिकार मिला, जिसका अर्थ यह था कि यह भूमि उनकी और उनके संतानों की हो गयी, जिसके लगान का दस या ग्यारहवां गुणा देकर वे भूमिधर बन सकते हैं। इसके साथ ही जोत सीमा अधिनियमों के द्वारा यह निश्चित हुआ कि एक किसान परिवार के पास जोत की अधिकतम सीमा क्या रह

सकती है। इस प्रकार के कानून सभी राज्यों में पारित हुए। यद्यपि भूमि सीमा सम्बन्धी कानूनों का परिपालन इतना अच्छा नहीं हुआ जिससे भूमिहीन किसानों को बहुत-सी भूमि मिलती। परन्तु यह निश्चित है कि जमींदारी प्रथा समाप्त हो गयी।

राजस्थान, मध्य भारत, विंध्य प्रदेश, पंजाब, सौराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश आदि क्षेत्रों में जहां पर देशी रियासतों का प्राधान्य था, शासन और भू-स्वामी के बीच में एक अन्य संगठन भी था। ये जागीरदार थे। इनको इनाम के तौर पर राजकीय सेवा के लिए जागीरें मिली हुई थीं और इन जागीरदारों के अपनी प्रजा के ऊपर असीमित अधिकार थे। देशी राज्यों के विलय के पश्चात जागीरदारी प्रथा भी समाप्त कर दी गयी। लगभग 600 रियासतें थीं और वे सारे देश में फैली हुई थीं। उत्तर में जम्मू-कश्मीर से लेकर दक्षिण में केरल में कन्याकुमारी तक का क्षेत्र राजाओं के अधीन था। बीच में हैदराबाद के निजाम और मैसूर के राजा भी थे, जिनकी रियासतों में कई-कई प्रांतों के लोग रहते थे और जो बाद में आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र जैसे राज्यों के रूप में दिखाई देने लगे। इन सब राज्यों से सबसे पहले राजाओं की निरकुंश सत्ता समाप्त हुई, फिर जागीरदारों के आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों को समाप्त किया गया और उसके बाद वहां के किसानों को मुक्ति दिलाई गयी। समता की दृष्टि से देशी राज्यों का विलय एक बहुत बड़ा कदम था जो स्वाधीन भारत की महान उपलब्धि है। स्वाधीनता से पूर्व देश में 601 राज्य थे जिनके राजा और नवाब भारत के स्वाधीन होते ही अपने को स्वाधीन समझने लगे। धीरे-धीरे उन्हें भारतीय संविधान की परिधि में लाया गया और एक ऐसा समय आ गया जब भारत के संविधान ने किसी को राजा, महाराजा या नवाब मानना या उनके विशेषाधिकारों को मान्यता देना अस्वीकार कर दिया। जो लोग किसी समय हिज हाईनेस, महाराजाधिराज, महाराणा, महारावल, निजाम या नवाब कहलाते थे, उन्हें श्री से संतुष्ट होना पड़ा। बहुत दिनों तक राष्ट्र ने उन्हें जेब खर्च या राजसी पेंशन भी दी परन्तु 1970 के दशक में वह समाप्त कर दी गयी और वे मात्र श्री रहे। यह बात अलबत्ता है कि उनके पूर्वजों ने जो धन-सम्पदा, आभूषण या अन्य सम्पत्ति छोड़ी थी, उसके एक भाग के वे स्वामी बने रहे परन्तु आज यह दृश्य नहीं दिखाई देता कि अगर आप राजा हैं तो आपको पेट्रोल में उत्पादन शुल्क नहीं देना पड़ेगा, विदेश से आयात करते समय कस्टम शुल्क नहीं देना पड़ेगा और यदि आपकी मोटर किसी ऐसी नदी के पुल पर होकर जायेगी जिस पर अन्य सवारियों से टौल शुल्क लिया जाता है, तो वह नहीं देना पड़ेगा। यह स्थिति आजादी आते ही नहीं आयी। आजादी के 25 वर्ष बाद यह स्थिति आयी और ऐसा करने के लिए भारत के एक प्रधानमंत्री को अनेक शक्तिशाली तत्वों से शत्रुता मोल लेनी पड़ी, जिसकी कीमत उन्हें एक बार शासन अधिकार छोड़ कर चुकानी पड़ी। परन्तु देश में धीरे-धीरे संविधान ने जिस प्रकार के समाज की कल्पना की थी, उसका विकास हआ।

संविधान में शोषण के विरुद्ध मानव अधिकारों की घोषणा की गयी और नीति निर्देशक सिद्धांतों के उपाय भी बताये गये। परन्तु उनके कार्यान्वयन में काफी समय लगा, न्यूनतम वेतन निश्चित किये गये, विभिन्न मजदूरों के लिए वेतनमण्डल बनाये गये और उन्होंने उचित वेतनों के लिए मानदंड स्थापित किये। सरकारी कर्मचारियों के लिए वेतन आयोग बने और इनकी सिफारिशों के फलस्वरूप केन्द्रीय और राज्य सरकारों के कर्मचारियों के वेतन में तो वृद्धि हुई, उनकी जो सैकड़ों श्रेणियां थीं, उन्हें समाप्त कर सीमित कर दिया। इस प्रकार आर्थिक आधार पर विषमताओं को दूर करने का प्रयास किया गया। यह कहना गलत होगा कि देश में विषमताएं नहीं हैं। कुछ लोग तो ऐसा मानते हैं कि विषमताओं के प्रकार में वृद्धि हुई है। यह सही है कि जो लोग व्यापार-धंधे में लगे हुए हैं, कराधान के बाद भी उनकी आमदनी और सम्पत्ति में वृद्धि हुई है और उसका कारण भी संविधान द्वारा प्रदत्त एक दूसरा मूल अधिकार है जिसमें अवसर की समानता प्रदान की गयी है। अवसर की समानता के प्रावधानों का लाभ उठाते हुए सरकारी नियंत्रण कम किये गये हैं जिनके अधिक से अधिक लोगों को व्यापार करने में अधिक सुविधा उपलब्ध हुई है और उनकी आय भी बढ़ी है। फिर भी यह सही है कि हस्तशिल्प और ग्राम-उद्योग में इतनी वृद्धि हुई है कि अब उन्हें विदेशी निर्यात का एक प्रमुख साधना माना जाने लगा है और इससे देहाती कारीगरों, विशेषतौर पर पिछड़े तथा दलित वर्ग के लोगों की आय में वृद्धि हुई है। उनका जीवन-स्तर बढ़ा है। इसी सिलसिले में ग्राम पंचायतों और न्याय पंचायतों में सभी वर्ग के लोगों को प्रतिनिधित्व मिला है, जिससे असमानता कम हुई है। जवाहर रोजगार योजना जैसी योजनाओं के द्वारा प्रत्येक ऐसे परिवार को रोजगार की गारंटी दी गयी है जिसमें कोई कमाने वाला नहीं है। इसी तरह गांव में शिक्षा का प्रसार बढ़ा है, साक्षरता बढ़ी है, स्वास्थ्य सेवाएं बढ़ी हैं, पेयजल की व्यवस्था हुई है और आवास योजनाएं भी बनायी जा रही हैं। इनसे एक ओर यह कहा जा सकता है कि निर्बल वर्ग के लोगों का जीवन-स्तर बढ़ा है, वहां पर यह भी समझना चाहिए कि आर्थिक स्तर में सुधार होने तथा शिक्षा का प्रसार होने से समता की भावना को बल मिला है। समता के प्रति आकांक्षाएं जगी हैं और शासन ने उन आकांक्षाओं की संतुष्टि के लिए प्रयास भी किये हैं।

यह ठीक है कि संविधान की मंशा के बाद भी सारे देश में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य नहीं हो सकी। जो लोग शिक्षा लेना प्रारंभ करते हैं, वे भी उसका पूरा लाभ नहीं उठा पाते और बीच में छोड़ देते हैं। औद्योगिक उन्नति के अवसर पूंजी अथवा समुचित सहयोगियों के अभाव में अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाते। लेकिन यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आज का किसान या मजदूर अपने को उतना बेसहारा, उतना लाचार अनुभव नहीं करता जितना वह तब अनुभव करता था जब भारत आजाद हुआ था। वह समय था जब देश खाद्यान्न की दृष्टि से आत्म-निर्भर नहीं था, जब हमें अपनी आवश्यकता की हरेक चीज विदेशों से आयात करनी होती थी और जब हमारी जनसंख्या का एक बड़ा भाग साल के काफी दिन बिल्कुल बेकार बैठा रहता था। शिक्षा का क्षेत्र सीमित था और जो लोग आर्थिक दृष्टि से सबल नहीं थे, उनके लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करना अथवा उस शिक्षा के द्वारा उन्नति के अवसर प्राप्त करना बहुत कठिन था। आज स्थिति उतनी विषम नहीं है। एक समय था जब बालक स्कूल के सामने होकर निकल जाते थे परन्तु स्कूल में प्रवेश के अवसर या साधन नहीं थे, आज समस्या दूसरी है। आज समस्या यह है कि हमारे यहां से इतने लोग लिख-पढ़कर तैयार हो रहे हैं कि उनको अपनी योग्यता के अनुरूप काम नहीं मिलता। एक वक्त था कि गांव में चिट्ठी पढ़वाने के लिए पढ़ा-लिखा आदमी ढूंढना पड़ता था, आज समस्या यह है कि अपनी चिट्ठी का जवाब ढूंढने के लिए गांव के इतने पढ़े-लिखे युवक रोज डाकखाने की आस लगाते हैं, पर उनकी चिट्ठी आती ही नहीं। अगर उन्होंने किसी परीक्षा के लिए आवेदन किया है तो उसका परिणाम चाहिए, नौकरी के लिए आवेदन दिया है तो इंटरव्यू की तिथि और इंटरव्यू दिया है तो नियुक्ति पत्र का इंतजार है। जिसकी आस में वे रोज डाकखाने जाते हैं और लौट आते हैं, पर आज गांव में डाकखाना तो है। एक वक्त था जब सप्ताह में एक दिन डाकिया आता था। अब तो हर गांव की पंचायत में एक टेलीफोन भी होने वाला है और यदि आपके पास आर्थिक साधन हैं तो गांव में बिजली की लाइन आये बिना आप सौर ऊर्जा से चालित दूरदर्शन देख सकते हैं, बिजली का बल्ब या पंखा चला सकते हैं और आपके यहां गैस की दुकान हो या न हो, आपकी गाय-भैंस का गोबर ही आपके घर के चूल्हे के लिए पर्याप्त गोबर गैस प्रदान कर सकता है, जिससे आप धुआं रहित वातावरण में भोजन बना सकते हैं। इस प्रकार बहुत से मामलों में गांवों और शहरों का अन्तर टूट रहा है। आज यह जरूरी नहीं कि अच्छी सड़क गांव होकर न गुजरे कि गांव में रहते हुए आप साफ सुथरा और सुरक्षित मकान न बना सकें और उस मकान में आधुनिक उपकरण न लगा सकें। यह सही है कि गांव में मोटर रखना या मोटर साइकिल भी रखना आज भी धनी परिवार का ही विशेषाधिकार है। परन्तु आपको तुरंत वाहन का फायदा मिल सकता है बशर्ते कि आप ट्रेक्टर पर या उसकी ट्राली में बैठकर अपने गांव से दूसरी जगह जाना चाहें। अभी तक बहुत धनिक लोग ही इस प्रकार के तेज वाहनों का प्रयोग कर सकते थे। और यह सब संभव हो सका है बैंकों से ऋण लेकर और थोड़ी बुद्धिमानी से अपनी कृषि उपज और आमदनी बढ़ाकर। इस दृष्टि से शहर और गांव में जो विभाजक रेखा थी, वह धीरे-धीरे कम होती जा रही है और यह हमारे संविधान निर्माताओं की आकांक्षाओं की फलश्रुति है। जहां तक संविधान निर्माण का सम्बन्ध है, हम डा. आम्बेडकर को भूल नहीं सकते।

55, काका नगर, नई दिल्ली-3

आम्बेडकर जन्मशती और सामाजिक न्याय : दशा एवं दिशा

रामजी प्रसाद सिंह

पत्रकार रामजी प्रसाद सिंह का मानना है कि भारत रत्न बाबा साहेब डा. भीमराव आम्बेडकर ने देश के करोड़ों दलितों के उत्थान की जो परिकल्पना की थी वह उन्हें राजनीतिक अधिकार दिलाने तक सीमित नहीं थी। बाबा साहेब यह बात भली-भांति जानते थे कि इन लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाए बिना देश में फैली भयावह सामाजिक और राजनीतिक विषमता को दूर नहीं किया जा सकता। दुर्भाग्य से ऐसा हुआ नहीं। आजादी मिले चार दशक पूरे हो चुके हैं लेकिन दलित वर्ग आज भी दलित है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि डा. आम्बेडकर द्वारा सुझाए गए सभी उपायों को पूरी तरह लागू नहीं किया गया। यदि इन उपायों को पूरी तरह लागू किया गया होता तो आरक्षण जैसी व्यवस्था को आगे बढ़ाने की आवश्यकता ही महसूस न होती।

डाक्टर भीमराव आम्बेडकर का नाम 19वीं सदी में उत्पन्न उन महान विभूतियों की श्रेणी में लिखा जायेगा, जिन्होंने मानव अधिकारों की प्रतिष्ठा के लिए अपना सम्पूर्ण उत्सर्ग किया। इस महान विचारक, वक्ता, लेखक, सम्पादक, संविधान वेत्ता और दार्शनिक की जन्मशती वर्ष को सामाजिक न्याय वर्ष के रूप में मनाने की घोषणा पूरी तरह सुसंगत है, क्योंकि बाबा साहेब ने देश की 80 प्रतिशत पिछड़ी आबादी को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक अधिकार सम्पन्न बनाने की जो परिकल्पना की थी, वह अभी तक अधूरी है।

निस्संदेह, संविधान ने सम्पूर्ण देशवासियों को राजनीतिक समानता का अधिकार प्रदान कर दिया है परन्तु आर्थिक और सामाजिक सत्ता सम्पन्न समाज आज भी अनुसूचित जातियों के सदस्यों को अपने मताधिकार का उपयोग करने नहीं देते। यद्यपि अब स्थिति पहले की तरह भयानक नहीं है फिर भी देश के विभिन्न मतदान केन्द्रों पर कब्जा करके दुर्बल वर्ग के सदस्यों को वोट देने से रोकने की घटनाएं जब तक बंद नहीं होंगी, समाज और सरकार को निरन्तर सजग रहना होगा। लोकतंत्र की जड़ में मट्ठा डालने वाले इस दुष्कर्म को कारगर ढंग से रोकने के लिए चुनाव आयोग को समुचित अधिकार देना होगा।

नागरिकों को आर्थिक समानता का अधिकार देना शायद किसी देश में सम्भव नहीं हुआ है, परन्तु देश में जैसी वर्ग विषमता और आर्थिक विषमता कायम है उसे दूर किया जा सकता था, परन्तु पिछले चालीस वर्षों से इस दिशा में कोई ठोस प्रयास नहीं किए गए। आर्थिक सत्ता मुट्ठी भर लोगों के हाथों में सिमट गई। चालीस प्रतिशत लोगों को भर पेट भोजन नहीं मिलता। बदन ढकने को कपड़े के नाम पर छः-सात गज चिथड़े और मकान के नाम पर एक अच्छी-सी झोपड़ी भी नदारद। महानगरों की करीब चालीस प्रतिशत आबादी झुग्गी-झोपड़ियों में जीवन बसर करती है अथवा पटरियों पर वास करती है।

समाजवाद

देश में समाजवाद की स्थापना का लक्ष्य 1929 में लाहौर कांग्रेस में ही निर्धारित कर लिया गया था। पं. जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में 26 जनवरी 1930 को रावी के तट पर पूर्ण स्वाधीनता की जो शपथ दिलाई थी उसमें आर्थिक और सामाजिक विषमता दूर करने का स्पष्ट संकल्प व्यक्त किया गया था। हमारे विधान निर्माताओं ने भी इस लक्ष्य को बरकरार रखा और संविधान के अनुच्छेद 39 में समाज के व्यापक हितों की रक्षा के लिए आर्थिक शक्तियों के केन्द्रण को

समाप्त करने का निर्देश दिया गया। पूर्ववर्ती सरकारों ने इसके अनुसरण में जमींदारी प्रथा को समाप्त कर जमीन पर किसानों को मालिकाना हक दिलाया। इम्पीरियल बैंक और 26 अन्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके इन्हें राष्ट्र को समर्पित किया। भूतपूर्व नरेशों की थैली बन्द कर दी गई। शहरी और ग्रामीण भूमि की सीमा निर्धारित की गई। बीमा कम्पनियों का भी सरकारीकरण किया गया। फिर भी धनपतियों के दुर्ग बरकरार रहे। समाजवाद का स्वप्न कोरी कल्पना सिद्ध हुई। सात पंचवर्षीय योजना के कार्यान्वयन के बावजूद चालीस प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा के नीचे अत्यन्त नारकीय जीवन व्यतीत करती रही है।

दिशा भ्रम

बाबा साहेब आम्बेडकर एक दूरदर्शी विचारक थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि संविधान सभा का बहुमत देश को जिस दिशा में ले जाना चाहता है उस मार्ग से समाजवाद नहीं आ सकता। फिर भी उन्होंने केन्द्रीय विधि मंत्री का पद सम्भालने के बाद अपने व्यक्तिगत विचारों को संविधान सभा पर लादने की चेष्टा नहीं की। उन्होंने सभा की आम राय को स्वीकार किया। उनकी समन्वयवादी प्रकृति का परिचय संविधान सभा की प्रारूप समिति को लिखे उनके स्मरण पत्र दिनांक 24 मार्च 1947 से मिलता है। डा. आम्बेडकर संविधान सभा में अनुसूचित जाति महासंघ के सदस्य के रूप में निर्वाचित हुए थे यद्यपि उन्हें कांग्रेस का पुरजोर समर्थन प्राप्त था।

स्मृति पत्र

बाबा साहेब ने राज्य के कर्त्तव्य और अल्पसंख्यकों के अधिकार के विषय में एक 22 सूत्री स्मरण पत्र भेजा था। इसे 'मैग्नाकार्टा आफ द हैव नाट्स' कहा जा सकता है। इस स्मृति पत्र की प्रस्तावना में उन्होंने स्पष्ट लिखा था कि स्वतंत्र भारत देसी रियासतों को साथ लेकर बने और उसका नाम 'यूनाइटेड स्टेट्स आफ इण्डिया' पड़े। इसमें नागरिकों को जीवन, स्वाधीनता, अभिव्यक्ति और धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी हो, दलित वर्ग को विशेष अवसर प्रदान कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विषमता समाप्त की जाए ताकि उन्हें अभाव और भय से मुक्ति मिले।

मूल अधिकार

अपने स्मृति पत्र में डा. आम्बेडकर ने नागरिकों के मौलिक अधिकारों की जो सूची शामिल की थी उसमें कहा गया था कि भारत में किसी नागरिक को न तो विशेषाधिकार प्राप्त होगा और न ही किसी को अयोग्य नागरिक करार दिया जाएगा। मूल वंश, लिंग, जाति, धर्म, परिवार, पद अथवा आचार-विचार के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव सर्वथा अमान्य होगा। सभी नागरिकों को कानून का संरक्षण समान रूप से प्राप्त होगा तथा मौलिक अधिकार में कोई कटौती सक्षम कानून के बगैर नहीं की जाएगी। घर, बैठक, चौपाल, सराय, विद्यालय, सड़क, गली, तालाब, कूप, शौचालय अथवा रेल, जहाज, मोटरगाड़ी या वायुयान के उपयोग का सभी को समान अधिकार होगा। इसमें बाधा डालना दंडनीय अपराध होगा जाति, धर्म, मूल, लिंग या सामाजिक स्तर के आधार पर किसी को किसी भी पद के लिए अयोग्य करार नहीं दिया जाएगा। नागरिकों को देश के किसी भी भाग में बसने और आवागमन करने की छूट होगी लेकिन लोक व्यवस्था अथवा नैतिकता के आधार पर इस अधिकार में कटौती की जा सकती है।

देश की सामाजिक-संस्कृति की रक्षा के उद्देश्य से डा. आम्बेडकर ने प्रत्येक जाति की सुरक्षा की गारंटी करने और बेगार की प्रथा समाप्त करने की मांग की थी। व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा की दृष्टि से उन्होंने अनुचित छापामारी पर रोक लगाने और बालिग मताधिकार (पागल और सजा प्राप्त कैदी को छोड़कर) देने का प्रस्ताव किया था। धार्मिक स्वाधीनता देने, प्रत्येक धर्मावलम्बियों को अपने धार्मिक रीति-रिवाजों का स्वतः नियमन करने की छूट देने तथा उसमें खलल डालने वाले को सजा देने के लिए कानून बनाने का प्रस्ताव रखते हुए डा. आम्बेडकर ने जोर दिया था कि राज्य का कोई धर्म नहीं होगा। इस प्रकार उन्होंने धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था, यद्यपि वे अत्यंत धार्मिक व्यक्ति थे।

एक विधिवेत्ता के नाते डा. आम्बेडकर ने नागरिकों को स्वाधीनता के अधिकार के उल्लंघन के मामले में सर्वोच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करने का अधिकार देने की अनुशंसा की थी और कहा कि न्यायलय के अधिकार क्षेत्र को सर्वथा अक्षुण्ण रखा जाये, बाह्य आक्रमण या आंतरिक विद्रोह की स्थिति में उसके अधिकार क्षेत्र में भले ही कटौती की जाये।

डा. आम्बेडकर ने यह भी प्रस्ताव किया था कि प्रेस की स्वाधीनता की गारंटी की जाये और उसके अधिकार क्षेत्र में कटौती की कोई गुंजाइश नहीं रखी जाये।

इससे स्पष्ट है कि डाक्टर आम्बेडकर प्रेस और न्यायालय की स्वाधीनता के प्रारंभ से ही पक्षधर थे। देश के आर्थिक एवं सामाजिक निर्माण के बारे में डा. आम्बेडकर की परिकल्पना बड़ी व्यापक थी। स्वराज प्राप्ति के पूर्व उन्होंने अपनी सम्पूर्ण योजना तैयार कर ली थी। उनके स्मृति पत्र दिनांक 24 मार्च 1947 में इसकी स्पष्ट झलक मिलती है। उनका प्रस्ताव था कि

देश की अर्थव्यवस्था की चोटी राज्य के हाथ में हो। इसलिए मूल उद्योगों का संचालन सार्वजनिक (सरकारी) क्षेत्र द्वारा हो, अनिवार्य बीमा की व्यवस्था हो और बीमा कंपनियों का राष्ट्रीयकरण हो। कृषि उद्योगों का संचालन राज्य सरकारें करें और मुआवजा देकर किसी की भी निजी सम्पत्ति को हस्तगत करने का सरकार को पूर्ण अधिकार हो, खेतों की चकबन्दी करके, उन्हें जोतने वालों के बीच वितरित किया जाये, सामूहिक खेती की व्यवस्था की जाये और सिंचाई जल, उर्वरक तथा कृषि यंत्रों की आपूर्ति का राजकीय प्रबन्ध हो।

उन्होंने इस बात पर भी बल दिया था कि इस प्रकार की औद्योगिक एवं कृषि व्यवस्था दस वर्षों के अन्दर शुरू कर दी जाये ताकि देश की आर्थिक पुनर्रचना की गति तेज हो, कृषकों और खेत मजदूरों की माली अवस्था में सुधार हो।

अल्पसंख्यक

अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए बाबा साहेब आम्बेडकर का 10 सूत्री कार्यक्रम था। उनकी राय थी कि मंत्रिमंडल में अल्पसंख्यकों की अपनी आबादी के अनुपात से स्थान मिले और उन्हें अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करने की छूट हो, धर्म के आधार पर किसी को बहिष्कार करना दंडनीय अपराध घोषित हो और अल्पसंख्यकों के लिए एक उच्चाधिकारी हो, जो नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के दर्जे का हो।

अनुसूचित जाति कल्याण

अनुसूचित जाति के सदस्य होने के नाते डाक्टर साहब को इनकी दुर्दशा की प्रत्यक्ष जानकारी थी। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि भारत की अनुसूचित जातियों के अभागे लोगों का कल्याण उन्हें केवल आर्थिक सम्बल प्रदान करने से नहीं होगा। उन्हें सामाजिक समानता/न्याय सुलभ करना होगा और इसमें राज्य की भूमिका बहुत सीमित होगी, क्योंकि जाति और मूल के नाम पर अस्पृश्यता का कलंक केवल भारत में विद्यमान है अन्यत्र कहीं नहीं।

अतएव बाबा साहेब ने प्रस्ताव किया कि अनुसूचित जातियों को विधायिका सभाओं में उनकी आबादी के अनुपात से प्रतिनिधित्व दिया जाये। साथ ही, उन्हें अपना प्रतिनिधि स्वयं चुनने का अधिकार दिया जाये। कार्यपालिका में भी उन्हें आबादी के अनुपात से स्थान दिया जाये।

उनकी यह मांग थी कि अनुसूचित जातियों के सदस्यों की उच्च शिक्षा की जिम्मेदारी केन्द्र सरकार संभाले और राज्य सरकारों को माध्यमिक एवं कालेज की शिक्षा का दायित्व संभालना चाहिए। इसके लिए शिक्षा बजट में भी अनुसूचित जातियों की आबादी के अनुपात से धनराशि की व्यवस्था हो तथा केन्द्रीय बजट में अनुसूचित जातियों की विदेशों में शिक्षा के लिए 10 लाख रुपये का प्रावधान किया जाये।

डा. आम्बेडकर चाहते थे कि यह व्यवस्था प्रारंभ में 25 वर्षों के लिए की जाये और बाद में इस व्यवस्था में संशोधन के प्रस्तावों को राष्ट्रीय बहस के लिए प्रसारित किया जाए। बाद में संसद में उसे दो-तिहाई बहुमत से स्वीकृत कराया जाये, लेकिन स्वीकृति मान्य तभी हो जब कि सदन में अनुसूचित जातियों के दो तिहाई सदस्य उपस्थित हों।

उनकी यह भी राय थी की अनुसूचित जातियों के सदस्यों को अल्पसंख्यक माना जाये, क्योंकि सत्ता में उनकी भागीदारी बिलकुल नहीं है।

यह सर्वविदित है कि डा. आम्बेडकर के इन प्रस्तावों को संविधान की प्रारूप समिति ने अस्वीकार किया। फिर भी बाबा साहेब ने इन मुद्दों पर हठ नहीं किया। उन्होंने कांग्रेस और महात्मा गांधी के निर्णय को स्वीकार किया। इससे उनकी समझौतावादी प्रवृत्ति उजागर हुई। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उनकी प्रतिभा और अनुसूचित जातियों एवं अल्पसंख्यकों के प्रति उनकी समर्पण की भावना को ध्यान में रखकर उन्हें केन्द्रीय विधि मंत्री नियुक्त किया। इसके पूर्व उन्हें संविधान सभा ने संविधान की प्रारूप समिति का अध्यक्ष मनोनीत किया था।

अनुसूचित जातियों को अल्पसंख्यक माने जाने के प्रस्ताव का मुख्यतः महात्मा गांधी ने विरोध किया था। उनकी धारणा थी कि अनुसूचित जाति के सदस्य बहुसंख्यक हिंदू जाति के अभिन्न भाग हैं। अतः इनके लिए पृथक से अपने प्रतिनिधियों का चयन करने का अधिकार देना अनुचित और अव्यवहारिक होगा।

आधुनिक मनु

विधि मंत्री के नाते डा. आम्बेडकर ने संविधान के निर्माण में जो अहम् भूमिका अदा की उसका सभी पक्षों ने आदर किया। उन्हें आधुनिक मनु की संज्ञा दी गयी। संविधान निर्माताओं में अग्रगण्य मानकर संसद भवन के अहाते में पंडित मोतीलाल नेहरू के पास ही उनकी आदम-कद प्रतिमा लगायी गयी। राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार ने उनकी प्रथम जन्मशती के अवसर पर उन्हें भारतरत्न की सर्वोच्च उपाधि से मरणोपरांत अलंकृत कर किया और संसद के केन्द्रीय कक्ष में उनका चित्र लगवाकर उनकी अनुपम देशभक्ति का अभिनंदन किया।

मोर्चा-सरकार के कार्यक्रम

प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने उनकी जन्मशती के

वर्ष को सामाजिक न्याय का वर्ष के रूप मनाने की घोषणा करके देश का ध्यान देश की अनुसूचित जातियों की समस्याओं की ओर आकृष्ट किया है। यह अत्यंत आवश्यक था क्योंकि 44 वर्षों के अनेक प्रयासों के बावजूद देश में आर्थिक और सामाजिक विषमता पूर्ववत् कायम है। अनुसूचित जातियों की अवस्था में सुधार के कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ते। आरक्षण का लाभ उठाकर जितने परिवार समृद्ध हो गये हैं, उनका लाभ भी उनके समाज के लोगों को नहीं मिल रहा है। उल्टे पिछड़ी जातियों में भी एक नव सामन्तवाद उभर रहा है।

राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार उनकी स्थिति पर नये सिरे से विचार के लिए वचनबद्ध थी। इसके अनुसरण में इसने कई कदम उठाये हैं। अनुसूचित जाति आयोग को संविधानिक दर्जा दिया गया है। अल्पसंख्यक आयोग को भी समान अधिकार दिया जा रहा है। महिला आयोग भी स्थापित हो गया। श्रमिकों को प्रबन्ध में शीघ्र ही हिस्सा दिया जायेगा। सरकार ने निवेश योग्य कुल पूंजी का आधा ग्राम-विकास पर लगाने का संकल्प लिया है और उसे अपने प्रथम बजट में लागू कर दिया है। ग्रामीण किसानों, खेत मजदूरों और दस्तकारों के दस हजार रुपये तक के बैंक ऋण की माफी की भी घोषणा की है। सुखाड़ वाले क्षेत्रों में रोजगार गारंटी योजना चार अरब रुपये की लागत से लागू की जा रही है। किसानों को लाभकारी मूल्य सुनिश्चित करने के लिए प्रमुख अनाज के न्यूनतम मूल्य में बढ़ोत्तरी की है। साथ ही कृषि वस्तुओं के मूल्य के निर्धारण के फार्मूले में किसानों के पक्ष में सुधार किया जा रहा है।

सरकार ने कृषि को उद्योग का दर्जा देने का वचन दिया है। इस संदर्भ में भानुप्रताप सिंह समिति की रिपोर्ट प्राप्त हो चुकी है। उसने कृषि को उद्योग का दर्जा प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया है और उसके लिए समुचित ऋण, यंत्र, उर्वरक, बिजली, उन्नत बीज, सिंचाई जल, कीटनाशक औषधियां, पशुधन विकास सेवा आदि को मुहैया करने की सिफारिश की है। आशा की जाती है कि केन्द्र सरकार उक्त सिफारिश को शीघ्र मान लेगी।

ग्राम एवं कृषि विकास मूलक इन परियोजनाओं का लाभ गांवों के प्रत्येक वर्ग के नागरिकों को निश्चित रूप से मिलेगा। इसके फलस्वरूप अनुसूचित जातियां एवं पिछड़ी जातियां भी निर्विवाद रूप से लाभान्वित होंगी।

केन्द्र सरकार ने मंडल आयोग की नौ वर्ष पुरानी रिपोर्ट को स्वीकार कर पिछड़ी जातियों के लिए केन्द्र सरकार के कार्यालयों और सरकारी कारखानों एवं बैंकों में 27 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने की घोषणा की है। केन्द्र सरकार में अभी भी ऐसे स्थान खाली पड़े हैं जिनके लिये सरकार को उम्मीदवार नहीं मिल पा रहे हैं।

पिछड़े और दबी हुई जातियों के मसीहा बाबा साहेब आम्बेडकर की जन्मशताब्दी के अवसर पर पिछड़ी जातियों को सरकार ने जो यह अवदान दिया है, यह सामाजिक परिवर्तन के प्रति इसकी वचनबद्धता का परिचायक है। आरक्षण की यह घोषणा सामाजिक न्याय के मार्ग में एक कीर्ति स्तंभ का काम करेगी।

आरक्षण नीति : पुनर्विचार अपेक्षित

फिर भी, सरकार को आरक्षण की नीति पर पुनर्विचार करना आवश्यक है। आरक्षण का सीधा लाभ सूचीबद्ध जातियों के शिक्षित और समृद्धिशाली वर्ग उठा लेंगे और उस वर्ग के अत्यंत गरीब लोगों को इसका लाभ नहीं पहुंच पायेगा। अतः जरूरी है कि आयकर चुकाने वाले या दो पुश्तों से आरक्षण का लाभ उठाने वालों को यह सुविधा नहीं दी जाये।

इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि पिछड़ी एवं अनुसूचित जातियों के छात्रों को विशेष सुविधायें देकर उन्हें रिक्त स्थानों को भरने के योग्य बनाया जाये।

एक बात और विचारणीय है कि आरक्षण की यह सुविधा कब तक कायम रखी जाये। हमारे संविधान निर्माताओं ने विधायिका सभाओं में आरक्षण की व्यवस्था सिर्फ दस वर्षों के लिए की थी। उनकी यह अपेक्षा थी कि सरकार एक दशक में आरक्षण प्राप्त जातियों की आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक स्थिति में इस हद तक सुधार लाने में सफलता प्राप्त करेगी कि उन्हें आरक्षण की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। सरकार उनकी अवस्था में कोई गुणात्मक सुधार नहीं ला सकी।

आवश्यकता इस बात की है कि इस आबादी के आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण के लिए अधिकतम दो-या तीन दशक की एक प्रभावशाली योजना अपनाई जाये ताकि उस पर अमल के बाद ये लोग सामान्य स्तर पर पहुंच जायें। उन्हें बैसाखी की आवश्यकता न हो।

देश के सर्वतोमुखी विकास और लोकशांति के लिए भी जरूरी है कि देश की अधिकतर आबादी को पतन के गहन गहवर से निकाल कर उन्हें सुखमय जीवन व्यतीत करने का शीघ्र-से-शीघ्र अवसर दिया जाये। राष्ट्रकवि दिनकर ने ठीक ही लिखा है:

**''शांति नहीं तब तक, जब तक सुखभाग न सबका सम हो
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो''**

**बी-2, बी-285,
जनकपुरी, नई दिल्ली-58**

सामाजिक न्याय की प्राप्तिः मंजिल अभी दूर है...!

डा. मुन्नीलाल विश्वकर्मा

भारतीय संविधान के ढांचे में स्पष्ट रूप से समाजवादी समाज की स्थापना का संकल्प निहित है। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के 43 वर्ष बाद भी हम सामाजिक न्याय का वह लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाये हैं जो हमने अपने संविधान के माध्यम से स्वयं के लिए निर्धारित किया था। पिछड़े वर्गों को आज भी समाज के कथित उच्च वर्गों के समान-स्तर पर नहीं लाया जा सका है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने इस क्षेत्र की असफलताओं पर प्रकाश डाला है तथा वास्तविक समाजवादी समाज की स्थापना के लिए अनेक सुझाव भी दिए हैं। लेखक का विचार है कि देश की राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन किए बिना इस उद्देश्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

योजना आयोग के गठन के विषय में 12 मार्च 1950 के संकल्प में इस भाग के दो अनुच्छेदों अनुच्छेद 39 और 35 (क), (ख) और (ग) का हवाला दिया गया है, जो इस प्रकार हैं–

"राज्य जनता के कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयत्न एक ऐसी सामाजिक-व्यवस्था की यथा-सम्भव प्रभावशाली रूप में स्थापना और उसकी रक्षा करके करेगा, जिसके अन्तर्गत न्याय–सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक–राष्ट्रीय जीवन की समस्त संस्थाओं में व्याप्त होगा।"

(अनुच्छेद–38)

"राज्य अपनी नीति का संचालन, खासतौर पर निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करेगा–

(क) नागरिकों को, पुरुषों और स्त्रियों, दोनों को समान रूप से जीवन-निर्वाह के पर्याप्त साधनों का अधिकार प्राप्त होगा।

(ख) समाज के भौतिक साधनों के स्वामित्व और नियंत्रण का वितरण इस प्रकार किया जाएगा कि सर्वोत्तम रूप से सबका भला हो।

(ग) आर्थिक प्रणाली की कार्यान्विति का परिणाम ऐसा न हो कि धन और उत्पादन के साधनों का जमाव आम जनता के हितों के विरुद्ध हो जाए।"

(अनुच्छेद–39)

यह भी उल्लेख किया गया है कि राज्य–

- कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी तथा अन्य अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त करने का प्रभावी उपबंध करेगा।
- राज्य इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा।

मार्च 1950 के सरकारी संकल्प में "भारत में योजना का उद्देश्य, देश के साधनों का कुशलता से दोहन व उत्पादन बढ़ाकर और समाज की सेवा में सभी वर्गों को रोजगार के अवसर प्रदान कर जन-सामान्य के जीवन-स्तर को शीघ्रता से ऊपर उठाना है।"

सामाजिक न्याय का अर्थ

सामाजिक न्याय से तात्पर्य है कि—"समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की मूल-भूत अनिवार्य आवश्यकताओं यथा भोजन, वस्त्र एवं मकान की पूर्ति हो, प्रत्येक व्यक्ति को विकास का उचित अवसर मिले। व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण को रोका जाए और आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो।"

सामाजिक न्याय किसको?

आज यह एक मुद्दा बन गया है कि वास्तव में वे कौन लोग हैं, जिन्हें समाज का कमजोर वर्ग कहा जाता है। इस सम्बंध में ऐसी कोई सीधी रेखा नहीं है जो उन्हें समाज के अन्य लोगों से पृथक करती हो। दूसरी तरफ इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे करोड़ों लोग हैं जो अत्यधिक गरीबी की स्थिति में जीवन-यापन कर रहे हैं, उनके पास न तो रहने का मकान है, न खाने को पर्याप्त अन्न और न ही तन ढकने हेतु कपड़े। भूमिहीन मजदूरों, सीमान्त कृषकों तथा बंधुआ मजदूरों की तरह ही ग्रामीण पिछड़े क्षेत्रों के लोग भी इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं, जिन्हें आज तक सरकार के लाख प्रयास के बावजूद न्याय नहीं मिल सका है।

पंचवर्षीय योजनाएं एवं सामाजिक न्याय

पहली पंचवर्षीय योजना एक प्रारम्भिक एवं अन्तर्वर्ती योजना थी, इसलिए इसमें सामाजिक न्याय उपलब्ध कराने का कोई उद्देश्य नहीं रखा गया था। दूसरी योजना में यह उद्देश्य रखा गया कि समाज के कमजोर तथा सुविधा-रहित वर्गों को संभव अवसर अधिकतम मात्रा में उपलब्ध कराये जायें। साथ ही 'समाजवादी समाज की स्थापना' का उद्देश्य भी रखा गया। तीसरी योजना का लक्ष्य भी रोजगार सुविधाएं बढ़ाना और आय एवं धन के अन्तर को घटाना था। चौथी योजना में द्रुत आर्थिक विकास और उसके साथ-साथ समानता एवं सामाजिक न्याय की दिशा में निरन्तर प्रगति का उद्देश्य रखा गया। पांचवीं योजना में गरीबी हटाओ के अन्तर्गत न्यूनतम आवश्यकताओं, राष्ट्रीय कार्यक्रम की व्यवस्था, रोजगार सुविधाओं पर बल, पिछड़े वर्गों के उत्थान तथा पिछड़े राज्यों के विकास पर विशेष बल दिया गया। छठीं योजना में—न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के माध्यम से आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़ी जनसंख्या के जीवन-स्तर को सुधारना था। सातवीं योजना में—गरीबी की समस्या पर सीधा प्रहार, बेकारी व क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करना था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि—भारत में नेहरूवादी समाजवाद ही दूसरी पंचवर्षीय योजना से लेकर सातवीं योजना तक लागू रहा। उनका कहना था कि "हमें ऐसा हिन्दुस्तान बनाना है, जिसमें न गरीबी हो, न बेकारी। प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक न्याय मिले और आर्थिक असमानताएं कम हों।"

तब से अब तक लगभग 35 वर्ष बीत चुके हैं। इस दौरान आर्थिक विकास हेतु लगातार प्रयास किये जाते रहे हैं। पंडित नेहरू के अनुसार—इस दौरान हमेशा यही प्रयास रहा है कि उन करोड़ों लोगों की ऐसी सभी गतिविधियों पर विशेष ध्यान देना होगा क्योंकि पिछड़ापन, निरक्षरता तथा विभिन्न प्रकार के शोषण जैसी समस्याएं दुर्भाग्यवश जिन्हें विरासत में मिली हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही सरकार द्वारा इस समाज के गरीब, पिछड़े एवं शोषित वर्ग के अन्य लोगों की बराबरी में लाने का प्रयास जारी रहा है। इस हेतु विभिन्न कार्यक्रम चलाये गये। इतना ही नहीं हमारे संविधान निर्माताओं ने कुछ वर्गों को रियायतें देने हेतु संविधान में विशेष प्रावधान भी किये। नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था की, निःशुल्क शिक्षा की सुविधा प्रदान की। जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लोगों को उचित स्थान एवं प्रतिनिधित्व मिल सके। शारीरिक रूप से विकलांग लोगों समेत समाज के पिछड़े वर्ग को रियायतें देने के भी अनेक प्रावधान किये गये हैं।

विकास बनाम सामाजिक न्याय

वस्तुतः अनेकानेक कठिनाइयों के बावजूद पंचवर्षीय योजनाओं ने देश की प्रगति के द्वार खोले हैं। अर्थव्यवस्था के अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, जो निम्नलिखित तालिका से स्पस्ट है :

योजनाकाल	राष्ट्रीय आय (1980-81 की कीमतों पर)	प्रति व्यक्ति आय (1980-81 की कीमतों पर)	कृषि उत्पादन	औद्योगिक उत्पादन	निर्यात	आयात
पहली योजना	3.6	1.7	4.1	7.3	1.0	3.9
दूसरी योजना	4.0	1.9	4.0	6.6	2.2	11.8
तीसरी योजना	2.2	--	1.4	9.0	4.2	4.4
वार्षिक योजनाएं	4.0	1.8	6.2	2.6	2.7	4.9
चौथी योजना	3.4	1.1	2.9	4.7	13.6	11.7
पांचवीं योजना	5.2	2.9	4.2	5.7	18.3	19.5
छठी योजना	5.2	3.0	6.0	6.4	13.2	21.7
सातवीं योजना (प्रथम चार वर्ष)	5.7	3.6	4.3	8.5	14.6	13.2

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्

विभिन्न क्षेत्रों में सराहनीय प्रगति हुई है। लेकिन क्या इस प्रगति का लाभ समाज के विभिन्न वर्गों को समान रूप से मिला है? सम्पन्न वर्ग और सम्पन्न हुआ है तथा गरीब और गरीब।

नेहरूवादी समाजवाद तथा इसके अन्तर्गत संचालित पंचवर्षीय योजनाओं से क्या देश में गरीबी, बेरोजगारी और असमानता घटी है? अनुसूचित जाति, अनसूचित जनजाति एवं समाज के पिछड़े वर्ग को कितना लाभ मिला है? इस उत्तर के लिए निम्नांकित प्रश्नों का उत्तर ढूंढने का प्रयास किया जाना चाहिए।

- क्या राष्ट्रीय आय में वृद्धि का समाज के विभिन्न वर्गों में न्यायोचित वितरण हुआ है?
- क्या अमीर एवं गरीब के बीच की खाई कम हुई है?
- क्या आम आदमी की बुनियादी जरूरतों की पूर्ति में सुधार हुआ है?
- क्या अनुसूचित जाति एवं अनसूचित जनजाति तथा समाज के पिछड़े एवं दलित वर्ग को संरक्षण का पूरा लाभ मिला है?

राष्ट्रीय आय-वितरण

समस्त राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति औसत आय से यह ज्ञात नहीं किया जा सकता है कि लोग सचमुच कैसे अपना जीवनयापन कर रहे हैं। हालांकि राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है लेकिन सम्पत्ति एवं आय के वितरण में काफी विषमता है। महालनवीस समिति के अनुसार "शहरों में 5 प्रतिशत परिवारों के पास कुल शहरी सम्पत्ति का 52 प्रतिशत केन्द्रित है जबकि 20 प्रतिशत व्यक्तियों के पास कोई सम्पत्ति नहीं है। इसी तरह भारत के 50 प्रतिशत व्यक्तियों को कुल आय का केवल 22 प्रतिशत ही प्राप्त होता है।"

सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण

नवीनतम सरकारी आंकड़ों के अनुसार देश की कुल सम्पत्ति का लगभग 33 प्रतिशत भाग सबसे ऊपर के 5 प्रतिशत परिवारों के हाथ में केन्द्रित है, इसमें से आधी सम्पत्ति तो सिर्फ 1 प्रतिशत परिवारों के पास है। निम्नतम 5 प्रतिशत परिवारों के हिस्से में देश की सम्पत्ति का मात्र 0.1 प्रतिशत भाग ही आता है। अतः इन दोनों 5 प्रतिशत परिवारों की सम्पत्ति में असमानता का अनुपात 1:3300 तथा नीचे के 1 प्रतिशत एवं ऊपर के 1 प्रतिशत परिवारों की सम्पत्ति में असमानता का अनुपात 1:2000 होगा।

भूमि वितरण

देश में भूमि वितरण की असमानताएं काफी अधिक हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार बिहार में आज भी 213 ऐसे भूमिपति हैं जिनके पास 200 एकड़ से अधिक जमीन है। इनमें से 43 भूमिपतियों के पास 500 एकड़ से अधिक और 17 भूमिपतियों के पास तो एक हजार एकड़ से भी अधिक जमीन है। एक भूमिपति के नाम तो अब भी सरकारी रिकार्ड में 10 हजार एकड़ जमीन दर्ज है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (1960-61) के आंकड़ों से पता चलता है कि गांवों में लगभग 75 प्रतिशत कृषि भूमि ऊपर के केवल 20 प्रतिशत लोगों के पास केन्द्रित है, जबकि नीचे के 20 प्रतिशत लोगों के पास लगभग कुछ भी भूमि नहीं है। यदि नीचे के 50 प्रतिशत लोगों को लें, तो देखेंगे कि मात्र 2.7 प्रतिशत भूमि उनके अधिकार में है।

दो हैक्टेयर से कम की जोतें कुल जोतों का 74.5 प्रतिशत है तथा इनके पास जोते गये कृषि क्षेत्र का केवल 26.3 प्रतिशत भाग है। दूसरी ओर 11.5 प्रतिशत बड़ी जोतों के पास कृषि क्षेत्र का 52.5 प्रतिशत भाग है। अर्थात् विभिन्न प्रकार के भूमि सुधारों के बावजूद भूमि-स्वामित्व का असमानता-प्रधान स्वरूप विद्यमान है। फलस्वरूप देश के उच्चतम 10 प्रतिशत भू-मालिकों के पास आज भी देश की 51 प्रतिशत कृषि भूमि है और दूसरी तरफ न्यूनतम 10 प्रतिशत के पास दशांश का दशांश।

शहरी क्षेत्रों की स्थिति इस वृद्धि से भिन्न नहीं है। नेशनल कौन्सिल आफ एप्लाइड इकोनामिक रिसर्च द्वारा प्रस्तुत आंकड़ों के अनुसार शहरी क्षेत्रों में ऊपर के 10 प्रतिशत परिवारों के पास लगभग 57 प्रतिशत भवन सम्पत्ति केन्द्रित है जबकि नीचे के 10 प्रतिशत ऐसे परिवारों के पास सिर्फ 1 प्रतिशत भवन सम्पत्ति का स्वामित्व है।

गरीबी का कसता शिकंजा

योजना आयोग के अनुसार यदि ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन पोषक तत्व नहीं मिलता है तो वह व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे माना जाएगा। यदि पौष्टिक आहार को रुपयों में परिभाषित किया जाता है तो ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 107 रुपये तथा शहरी क्षेत्रों हेतु 122 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति माह आता है। इस तरह जिन व्यक्तियों का उपभोग इस सीमा से कम है उन्हें गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है। निम्नलिखित तालिका भारत में गरीबों की संख्या को दर्शाती है :

वर्ष	गरीबों की संख्या (मिलियन में)	
	ग्रामीण	शहरी
1960-61	138	29
1970-71	200	41
1977-78	253	54
1984-85	222	51
1989-90 (लक्ष्य)	189	42

स्रोत : दैनिक हिन्दुस्तान 25 जुलाई 1990

बढ़ती बेरोजगारी

भारत में बेरोजगारी की सही स्थिति का अनुमान लगाना कठिन है क्योंकि विश्वसनीय आंकड़ों का अभाव है। ऐसा अनुमान है कि पहली योजना के प्रारम्भ में 33 लाख लोग बेरोजगार थे, लेकिन यह संख्या बढ़कर इस योजना के अंत में 53 लाख, दूसरी योजना में 71 लाख, तीसरी योजना में 96 लाख, चौथी योजना में 171 लाख, पांचवीं योजना में 221 लाख हो गयी, वर्ष 1986 में 3 करोड़ 13 लाख, 1987 में 3 करोड़ 25 लाख, एवं वर्ष 1988 में 3 करोड़ 5 लाख हो गयी। मार्च 1989 के अंत में बेरोजगारों की कुल संख्या 3 करोड़ 3 लाख थी।

बच्चों का शोषण

आजाद भारत में जितनी ऊंची आवाज में बाल कल्याण, महिला कल्याण अथवा अनुसूचितों के उत्थान की बात की जाती है, यथार्थ में कुछ और ही देखने को मिलता है। 43 वर्षों के उपरान्त आज भी छोटे-छोटे बच्चे जिनको स्कूल में होना चाहिए, घरों के फर्श रगड़ते, झाड़ू लगाते, हलवाइयों के बर्तन मांजते, होटलों में प्लेट साफ करते, मेम साहिबाओं के बच्चे खिलाते अथवा रेलवे स्टेशनों, बस स्टेशनों एवं सार्वजनिक स्थलों पर भीख मांगते नजर आते हैं। भारत के उज्ज्वल भविष्य की कामना एवं आकांक्षा रखने वालों को इस स्थिति का सदमा लगना अस्वाभाविक नहीं है। प्रायः जहरीली गैस उगलने वाली फैक्टरियों में इन गरीब बच्चों को काम करते-करते भयानक बीमारियां तक घेर लेती हैं। बेचारों के हाथ-पांव भी मशीनों की भेंट चढ़ जाते हैं। ऐसा भी नहीं है कि इस श्रम का उनको इतना अधिक पारिश्रमिक मिलता हो कि अवकाश के क्षणों का वह अमीर परिवारों में जन्में बच्चों के समान जीवन का आनन्द लेते हों, भर पेट खाना पा जाते हों, अच्छे कपड़े पहनते हों, कठोर श्रम साध्य जीवन जीने के बावजूद गरीबी उनका पिण्ड नहीं छोड़ती।

आवास समस्या

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है, लेकिन उस अनुपात में आवासों का निर्माण नहीं किया गया। उदाहरणार्थ 1961-81 के बीच जनसंख्या वृद्धि की दर 24.8 प्रतिशत थी जबकि आवास गृहों की संख्या में 18.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वर्ष 1950-51 में जहां 11 प्रतिशत लोगों के पास आवास नहीं थे, वहीं 1989 के अंत में 25 प्रतिशत जनसंख्या बिना घर के हो गयी। सन् 1950-51 में देश में रहने के लिए मकानों की कुल कमी 80 लाख थी जो 1985 तक बढ़कर लगभग 286 लाख हो गयी।

गांव से शहरों की ओर पलायन से देश के सभी नगरों एवं महानगरों में झुग्गी झोपड़ियों की संख्या बढ़ रही है। कलकत्ता की 40, बम्बई की 40, मद्रास की 30, अहमदाबाद की 26, दिल्ली की 30, हैदराबाद की 21, पुणे की 17 तथा बंगलौर की 12 प्रतिशत आबादी झोपड़ पट्टियों में रहती है। सन् 1951 में एक घर में 5.6 लोग रहते थे। 1961 में बढ़कर यह संख्या 5.83 तथा 1981 में 6.06 हो गयी। सिर्फ बम्बई में ही पटरियों पर रहने वालों की संख्या 10 लाख (1989) हो गई है।

गांवों में 95 प्रतिशत तथा शहरों में 44 प्रतिशत घरों में पेयजल पूर्ति की व्यवस्था नहीं है।

देहाती क्षेत्र के 92 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्र के 33 प्रतिशत घरों में शौचालय की व्यवस्था नहीं है। देश की 2/3 जनसंख्या आज भी अशिक्षित है।

आरक्षण का लाभ कितना?

सरकार ने अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति को संविधान के अनुच्छेद 16 तथा 33 में उनकी आबादी के अनुपात में सरकारी सेवाओं में स्थान सुरक्षित करने की व्यवस्था की है, लेकिन लगभग 43 वर्षों के उपरान्त भी इन्हें आरक्षण का भरपूर लाभ नहीं मिल सका है। भारत की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति/जनजाति का प्रतिशत 22.5 है। शिक्षा में इनका प्रतिशत 6, सरकारी सेवाओं में 7 प्रतिशत व्यापार उद्योग में 0.2 प्रतिशत, कृषि उद्योग में 2 प्रतिशत है, अनुसूचित जाति/जनजाति का सरकारी सेवाओं में श्रेणी 'ए' वर्ग (क्लास एक) में 4.95 प्रतिशत, 'बी' वर्ग (क्लास दो) में 3.3 प्रतिशत, 'सी' (क्लास तीन) वर्ग में 13.44 प्रतिशत, 'डी' वर्ग (क्लास चार) में 2 प्रतिशत है। सार्वजनिक उपक्रमों में सेवा का अनुपात क्लास एक, दो, तीन एवं चार में क्रमशः 2.7, 3.3, 6.9, एवं 12.4 प्रतिशत है।

इसी से स्पष्ट है कि जब सरकार अनुसूचित जाति, जनजाति

का आरक्षण कोटा भर नहीं सकती, तो फिर किस प्रकार यह कार्य पूरा किया जा सकता है?

वास्तविकता तो यह है कि आजादी के चार दशकों में किसी भी राजनीतिक दल ने आरक्षण के मसले पर गम्भीरता और ईमानदारी से विचार नहीं किया है। जब भी चुनाव नजदीक आए, दलितों को बहकाया, फुसलाया गया। चुनाव जीत कर उन्हें अपनी हालत पर छोड़ दिया गया। या यों कहें कि वोट की राजनीति के चलते इस दलित वर्ग का उत्थान नहीं हो पाया है।

सामाजिक न्याय की प्राप्ति में बाधाएं

सामाजिक न्याय की प्राप्ति में निम्नलिखित बाधाएं हैं :

1. तीव्रगति से बढ़ती जनसंख्या।
2. गरीबी, बेरोजगारी और असमानताओं में वृद्धि होना।
3. उत्पादन के साधनों का अनुचित वितरण।
4. उचित सरकारी राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति का अभाव।
5. प्राकृतिक संसाधनों का समुचित विदोहन न होना।
6. नियोजन में प्राथमिकताओं का गलत चयन।
7. नियोजन की कुछ मौलिक त्रुटियां।
8. औद्योगिक सेवा क्षेत्र की धीमी वृद्धि।
9. ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में पूंजी गहन तकनीक का उपयोग।
10. केन्द्र एवं राज्य सरकार की गलत कराधान-नीतियां।
11. कीमतों में तेजी से वृद्धि।
12. प्रशासनिक स्तर पर भ्रष्टाचार।
13. आरक्षण नीति का गलत क्रियान्वयन।
14. कालेधन में वृद्धि।

उपर्युक्त कारणों के चलते समाजवादी समाज की स्थापना और समाज के कमजोर तबके के लोगों को सामाजिक न्याय नहीं मिल सका है।

समाजवादी समाज की स्थापना कैसे?

समाजवादी समाज की स्थापना में निम्नलिखित सुझाव सहायक सिद्ध हो सकते हैं :

1. जनसंख्या वृद्धि पर तत्काल नियंत्रण लगाया जाय।
2. समाज के पिछड़े एवं दलित वर्ग हेतु जो भी कार्यक्रम अथवा नीतियां बनायी जाएं, उनका क्रियान्वयन ईमानदारी एवं मुस्तैदी के साथ किया जाय।
3. भ्रष्ट कर्मचारियों एवं अधिकारियों को कठोर दण्ड दिया जाय ताकि वे भविष्य में भ्रष्टाचार में लिप्त होने का साहस ही न कर सकें।
4. न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका तीनों ईमानदारी पूर्वक अपने कर्तव्यों का निर्वाह करें।
5. काले धन को रोकने हेतु हर सम्भव प्रयास किया जाय।
6. ग्रामीण औद्योगीकरण एवं श्रमप्रधान तकनीक पर बल दिया जाय ताकि अधिकाधिक लोगों को रोजगार मुहैया हो सके।
7. भूमि सुधार कानूनों को कड़ाई से लागू किया जाय।
8. राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति देश की स्थिति को देखते हुए निर्धारित की जाय।
9. देश एवं समाजहित में प्राकृतिक संसाधनों का समुचित विदोहन किया जाय।
10. समाज के सम्पन्न वर्ग पर कर सर्वाधिक एवं गरीब वर्ग पर न्यूनतम लगाया जाय।
11. सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण पर रोक लगायी जाय।
12. गैर दलित, दलित और शोषित समाज की उस पीड़ा को महसूस करें जिसे दलित समाज सदियों से जूझ रहा है तभी दलित, शोषित एवं समाज के पिछड़े वर्ग को सामाजिक न्याय मुहैया कराया जा सकता है।

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि समाज के गरीब, पिछड़े, दलित एवं शोषित समाज को सामाजिक न्याय तभी मिल सकता है, समाजवादी समाज की स्थापना तभी हो सकती है, जब तक कि देश की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था में मूल-भूत परिवर्तन नहीं कर दिया जाता और यह परिवर्तन तभी सम्भव है जबकि देश में गांधी, नेहरू, सुभाष, पटेल, अब्दुल कलाम आजाद और लालबहादुर शास्त्री, जय प्रकाश नारायण, डा. लोहिया जैसे देशभक्त राजनेताओं का उदय हो। अन्यथा 'सामाजिक न्याय' और 'समाजवादी समाज की स्थापना' का संकल्प दिवास्वप्न ही साबित होगा।

प्राध्यापक अर्थशास्त्र
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

डा. भीमराव आम्बेडकर और समता का सपना

मस्तराम कपूर

सामाजिक न्याय एक व्यापक विषय है। इस पर जितना कहा जाए या लिखा जाए कम है। यह कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि इस पर और भी गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है। हमारा समाज किसी एक व्यक्ति की ही मान्यताओं पर आधारित नहीं है। सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए समाज में विभिन्न विचारधाराओं को साथ लेकर चलने की क्षमता होनी चाहिए। समाज का कोई अंग यदि कमजोर है या बीमार तो उसे स्वस्थ करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए न कि उसे काट देना। हमारा ध्येय समाज के लिए न्याय प्राप्त करने का है, न कि इसे विभाजित या अपंग करने का। अतः समाज कल्याण ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

विद्वान लेखक पत्रकार श्री मस्तराम कपूर ने अपने इस लेख में जिन भावनाओं को प्रकट किया है उन्हें यथार्थ रूप देना अनिवार्य है किन्तु हमें सभी वाद-विवादों को त्याग कर कुछ ऐसे उपाय खोजने होंगे जिन्हें हमारा समाज सहज स्वीकार कर सके, जिससे प्यार बढ़ सके, दुविधा दूर हो सके।

समतामूलक समाज का हमारा सपना बहुत पुराना है। ऊंच-नीच के भेदभाव को समाप्त करने के लिए यहां हमेशा आंदोलन चलते रहे। महावीर और बुद्ध के आंदोलन और फिर सिद्धों, नाथों तथा संत परंपरा के कबीर, दादू, नानक, रैदास से लेकर तुकाराम, बसव, नारायण गुरु तक सारे इतिहास में समता की स्थापना का आंदोलन चला। आधुनिक काल में स्वामी दयानंद ने जाति-व्यवस्था को वेद-विरुद्ध घोषित करके एक जबर्दस्त प्रहार जाति-व्यवस्था पर किया। महात्मा फुले ने सत्य शोध समाज की स्थापना करके समता के आंदोलन को और आगे बढ़ाया। हमारा राष्ट्रीय आंदोलन 19वीं शताब्दी में चले सामाजिक आंदोलन से ही निकला।

यह स्वाभाविक ही था कि कांग्रेस की स्थापना के समय पहले संस्थापकों के मन में सामाजिक आंदोलन की ही बात आई। ह्यूम ने कांग्रेस की कल्पना इसी रूप में की थी। लार्ड डफरिन ने सुझाव दिया कि कांग्रेस को सम्राट के विपक्ष की भूमिका अदा करनी चाहिए। चूंकि प्रारंभ में कांग्रेस मध्य वर्ग के शिक्षित लोगों की संस्था थी, उसकी राजनैतिक मांगें मध्य वर्ग के हितों के संबंध में होती थीं। लेकिन सामाजिक समता के प्रति प्रायः सभी नेता जागरूक होते थे। कांग्रेस की स्थापना के दो साल बाद इंडियन नेशनल सोशल कांफ्रेंस की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य था समता आंदोलन को आगे बढ़ाना और जो लोग सदियों से अधिकार से वंचित रहे हैं उन्हें उनके अधिकार दिलाना। इसमें सर टी. महादेवन, महादेव गोविंद रानडे, नरेंद्रनाथ सेन और जानकीनाथ घोषाल जैसे नेता थे। ये सभी नेता राष्ट्रीय कांग्रेस के भी बड़े नेता थे। राष्ट्रीय कांग्रेस और सोशल कांफ्रेंस एक दूसरे की सहायक संस्थाओं के रूप में काम करती थीं। दोनों के वार्षिक अधिवेशन एक ही स्थान पर और एक ही पंडाल के नीचे होते थे। किन्तु जब कांग्रेस में नरम और गरम दल के गुट बने तो सोशल कांफ्रेंस कांग्रेस से दूर होती गई। वस्तुतः नरम और गरम का भेद ही इस बात को लेकर हुआ कि नरम दल के नेता सामाजिक न्याय के सवालों को कांग्रेस के मंच से उठाना चाहते थे और गरम दल के नेता कांग्रेस को सिर्फ राजनैतिक सवालों तक सीमित रखना चाहते थे। गरम गुट के नेता जिसका नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक कर रहे थे, समाज-सुधार की धारा का हिन्दू कट्टरपंथियों में जो तीव्र विरोध पैदा हो रहा था, उसका प्रतिनिधित्व कर रहा था। ये मतभेद इतने तीव्र हुए कि कांग्रेस के पूना अधिवेशन के समय गरम दल के समर्थकों ने उस पंडाल को ही जला देने की धमकी दी जिस पर कांग्रेस अधिवेशन के बाद सोशल कांफ्रेंस का अधिवेशन होने वाला था।

सामाजिक समता के आंदोलन को पहला धक्का तब लगा जब तिलक आदि गरम दल के नेताओं ने सामाजिक जागरण के कार्यक्रमों का विरोध किया। उन्होंने तर्क दिया कि कांग्रेस के मंच से सामाजिक सवालों को उठाने से राजनैतिक आंदोलन की

तीव्रता कम हो जाएगी लेकिन वास्तव में यह गुट समाज-सुधारों का ही विरोध कर रहा था। तिलक ने बाल-विवाह पर रोक लगाने वाले सहमति वय के कानून का विरोध किया, विधवा-विवाह और स्त्री-शिक्षा के विरोध में भी उन्होंने वक्तव्य दिए। एक बार दलित जातियों के लोग उनके पास गए और मांग रखी कि दलित जातियों को भी राजनीति में उचित प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। तिलक ने उन्हें झाड़ दिया यह कह कर कि दलितों को कानून का पालन करना चाहिए और कानून बनाने की शक्ति प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा छोड़ देनी चाहिए।

इतिहास की यह भयानक भूल थी कि शुरू के दिनों में कांग्रेस ने दलितों को विदेशी शासकों के रहम पर छोड़ दिया। यही गलती मुसलमानों के संबंध में भी हुई। इसके परिणामस्वरूप मुसलमानों ने 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना की और दलितों ने भी 1907 में डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन बनाया।

चूंकि हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के अधिकांश नेता सवर्ण जातियों से आए थे, दलित जातियों की पीड़ा से वे अपरिचित थे और उसके प्रति उनका उपेक्षा का भाव था। मोरले मिंटों सुधारों के अंतर्गत मुसलमानों को विशेष प्रतिनिधित्व का अधिकार मिला तो कांग्रेस ने कांग्रेस लीग समझौते के अंतर्गत उसे मान लिया। लेकिन जब मोंटफोर्ड सुधारों के अंतर्गत दलितों के अधिकारों को स्वीकार किया गया तो बावेला मच गया। इसी तरह सुप्रसिद्ध कम्युनल मंडल का अधिकार दिया गया तो कांग्रेस के नेताओं को तकलीफ नहीं हुई किंतु जब दलितों को पृथक निर्वाचक मंडल का अधिकार मिला तो महात्मा गांधी आमरण अनशन पर बैठ गए।

राष्ट्रीय आंदोलन के इस पूरे परिप्रेक्ष्य में डा. आम्बेडकर की भूमिका का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

हमारे स्वतंत्रता आंदोलन के बुनियादी मूल्य सभी आधुनिक सभ्य समाजों की तरह स्वतंत्रता, समता और बंधुता है। इन मूल्यों को हमने संविधान की प्रस्तावना में रखा है।

संविधान का महापंडित होने के कारण डा. आम्बेडकर इन तीनों मूल भूत मानव-मूल्यों को जितनी पूर्णता से समझते थे, उतनी गहरी पहुंच हमारे किसी अन्य राष्ट्रीय नेता की नहीं थी। इसका एक कारण यह भी है कि उन्हें अपने जन्म की परिस्थितियों के कारण जिन यातनाओं से गुजरना पड़ा, उसका दूसरे नेता मात्र अनुमान लगा सकते थे। जब उन्होंने गोलमेज कांफ्रेंस के मौके पर घोषणा की कि समता के बिना स्वतंत्रता बेमानी है सवर्ण जाति के बुद्धिजीवियों और कांग्रेस के नेताओं ने उन्हें राष्ट्रद्रोही कहा। फ्रेंच दार्शनिक ज्यां पाल सार्त्र के सारे दर्शन का निचोड़ ही है कि समता के बिना स्वतंत्रता नहीं हो सकती। किंतु हमारे यहां तो हजारों साल से बुद्धि को भक्ति के मुकाबले में तिरस्कृत किया गया है। हमें बुद्धि से काम लेने की आदत ही नहीं। डा. आम्बेडकर पर हमारे समाज के नेताओं ने जो अभद्र प्रहार किए हैं उसका बड़ा कारण हमारे यहां बुद्धिनिष्ठ सोच की कमी रही है।

सच बात यह है कि आम्बेडकर न होते तो हमारा राष्ट्रीय आंदोलन अधूरा ही रहता। जैसा कि पीछे कहा गया समता की धारा गरम गुट के प्रभुत्व में आने के बाद अवरुद्ध हो गई। आगे चलकर गांधी ने इस कमी को महसूस किया और उन्होंने अछूतोद्धार आदि के रचनात्मक कार्य चलाए। लेकिन गांधीजी के मन में समता की स्पष्ट कल्पना नहीं थी क्योंकि उन्होंने कभी सामाजिक गैर-बराबरी की यातना नहीं भोगी थी। गांधीजी आम्बेडकर के सम्पर्क में आने से पहले जाति-व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था को मानते थे लेकिन आम्बेडकर के साथ हुई विचारों की टकराहट के बाद वे न केवल जाति-व्यवस्था को पाप मानने लगे बल्कि उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे उसी शादी को अपना आशीर्वाद देंगे जो अंतर्जातीय या अंतर्धर्मीय शादी हो। कहा जाता है कि जिन्ना और आम्बेडकर को छोड़ कर शेष सभी नेता और महापुरुष गांधी के जादू से प्रभावित हुए लेकिन गांधी पर अपना जादू चलाने वाले अकेले नेता डा. आम्बेडकर ही हुए।

डा. आम्बेडकर जानते थे कि दलित वर्गों को दिए गए सामाजिक अधिकारों के मामले में सवर्ण जातियों के वर्चस्व वाली कांग्रेस के नेता ईमानदारी नहीं बरतेंगे। उन्हें विश्वास था कि जिन लोगों ने पूना समझौते के अवसर पर हुए प्रीति-भोज में शामिल होने के बाद गंगाजल पीकर अपने को शुद्ध कर लिया था वे दलितों को ऊपर उठाने में सच्चे दिल से रुचि नहीं लेंगे। उन्होंने पंचायतों को राज्य की मूल इकाई बनाने का विरोध किया क्योंकि वे जानते थे कि यदि पंचायतें गांवों में सर्वेसर्वा हो गई तो दलित जातियों का गांवों में रहना मुश्किल हो जाएगा। उन्होंने दलित-अधिकारों के प्रभावी प्रवर्तन के लिए संवैधानिक प्राधिकरण बनाने पर जोर दिया और इसके परिणामस्वरूप अनुसूचित जातियों के आयुक्त की कल्पना की गई।

दलित वर्गों के संबंध में डा. आम्बेडकर की कल्पना केवल अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तक सीमित नहीं थी। उनकी नजर में देश की वह सारी जनता जो जाति व्यवस्था के कारण सदियों से शिक्षा, संपत्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा के अधिकारों से वंचित थी, दलित वर्ग में आती थी। संविधान का प्रारूप प्रस्तुत करते समय उन्होंने अपने भाषण में

कहा था कि जिन दलित जातियों को समयाभाव के कारण सूचीबद्ध नहीं किया जा सका है, उनके आरक्षण निश्चित करने के लिए अलग आयोग काम करेगा। संविधान में इस आयोग के लिए प्रावधान किया गया। इस प्रावधान के तहत पहले काका कालेलकर कमेटी बनी लेकिन उनकी सिफारिशों को सरकार ने मान्यता नहीं दी। फिर जनता सरकार के दिनों में मंडल आयोग की नियुक्ति की गई लेकिन इस आयोग की सिफारिशों को भी पिछले दस सालों में कार्यान्वित नहीं किया गया। इस तरह डा. आम्बेडकर की भावनाओं को न तो सवर्ण जातियों की राजनीति करने वाले राजनैतिक दलों ने समझा और न अनुसूचित वर्गों ने। वर्तमान सरकार ने मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा की है।

सामाजिक क्रांतिकारी आम्बेडकर

सामाजिक क्रांतिकारी के रूप में डा. आम्बेडकर का नाम इतिहास में हमेशा के लिए सुरक्षित रहेगा। हिन्दू जाति के पूरे इतिहास में उदारता और कट्टरता के संघर्ष चलते रहे। डा. आम्बेडकर उदार आंदोलनों की कड़ी के सबसे प्रखर महापुरुष थे। उन्होंने जाति-संस्था का वैज्ञानिक विवेचन पहली बार 1916 में प्रस्तुत किया था। इस विषय को उन्होंने और मांजा और 1936 में लाहौर के जात-पात तोड़क मंडल के आमंत्रण पर आर्य समाज के अध्यक्षीय भाषण के रूप में एक सर्वांगपूर्ण निबंध तैयार किया। इस निबंध की कुछ बातों से असहमत होने के कारण लाहौर के आर्य समाज ने आयोजन को ही स्थगित कर दिया लेकिन यह निबंध जब पुस्तक के रूप में छपा तो इससे हिन्दू समाज की चूलें हिल गईं। महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति को भी अपने पत्र में इसकी डट कर आलोचना करनी पड़ी। लेकिन यह पुस्तक 'जाति प्रथा का उन्मूलन' भारत में सामाजिक क्रांति लाने में समर्थ इतना प्रामाणिक दस्तावेज है कि समाजवादी चिंतक मधु लिमये ने इसे भारत के लिए अधिक महत्वपूर्ण माना है।

डा. आम्बेडकर हिन्दू समाज में आमूल परिवर्तन लाना चाहते थे और इसके लिए उनके पास एकमात्र हथियार था तर्क-शक्ति और विचार-शक्ति का। उन्हें गांधी के हथियारों, सत्याग्रह आदि पर ज्यादा आस्था नहीं थी। शुरू के दिनों में उन्होंने अवश्य सत्याग्रह का सहारा लिया था लेकिन वे इसे अधिक महत्व नहीं देते थे। उन्हें विचारों की शक्ति और कानून की शक्ति पर अधिक भरोसा था। एक तरफ उन्होंने स्वामी दयानंद की तरह विचार-युद्ध शुरू किया और दूसरी तरफ कानून बनाने वाली राजनैतिक शक्ति को प्राप्त करने की कोशिश की। विचार-शक्ति को हथियार बनाने वाले के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह तलवार और भाले की तरह चुभने वाली भाषा का इस्तेमाल करे। दुनिया के सभी महान समाज-सुधारकों की भाषा इसीलिए तीखी होती है। इसमें वाल्टेयर, मार्क्स, दयानंद, लोहिया और आम्बेडकर एक ही सिक्के में ढले लगते हैं। चारों तरफ से विरोधियों से घिरे हुए ये सभी महारथी, अभिमन्यु की तरह चक्र (विचार) के अहिंसात्मक हथियार से लड़ने के लिए अभिशप्त थे। इनकी भाषा का तीखापन तलवार के घाव से भी ज्यादा पीड़ादायक था। इसलिए उनका विरोध कड़ी मात्रा में हुआ। तर्क से पराजित व्यक्ति बल का ही सहारा लेता है। आम्बेडकर की युक्तियों का उत्तर न दे पाने वाले उन पर ओछे प्रहार करने लगे और इन प्रहारों का सिलसिला आज तक चल रहा है।

सामाजिक परिवर्तन का दूसरा साधन उन्होंने राजनैतिक शक्ति को बनाना चाहा। कांग्रेस के साथ उनकी लड़ाई इसी बात को लेकर थी कि कांग्रेस दलितों को राजनैतिक सत्ता से दूर रखना चाहती थी जबकि वे राजनैतिक सत्ता में बराबर की हिस्सेदारी लेना चाहते थे। पहली बार उन्होंने अपनी राजनैतिक मांगें साऊथबरी कमेटी के सामने रखीं और फिर कम्युनल अवार्ड और बाद में पूना समझौते में उन्होंने राजनैतिक शक्ति पर अपनी पकड़ मजबूत की।

डा. आम्बेडकर को वयस्क मताधिकार की शक्ति पर बड़ी आस्था थी और उनका विश्वास था कि दलित वर्ग अपनी संख्या के बल से सत्ता पर कब्जा कर सकते हैं और फिर कानून बना कर सदियों पुरानी सामाजिक विषमता को दूर कर सकते हैं। लेकिन उनका यह सपना न तो उनके जीते जी पूरा हुआ और न उनके निधन के बाद।

1952 के आम चुनावों से पहले उनकी पार्टी का समाजवादी पार्टी और श्वेतकारी कामगार पार्टी के साथ संयुक्त मोर्चा बना और उपचुनावों में उन्हें बहुत अच्छी सफलता भी मिली लेकिन उसके बाद जब आचार्य कृपलानी के नेतृत्व वाली किसान मजदूर पार्टी के साथ समाजवादी पार्टी का विलय हुआ और प्रजा समाजवादी पार्टी बनी तो आम्बेडकर समाजवादी पार्टी से अलग हो गए। हिन्दू कोड बिल का विरोध करने के कारण आम्बेडकर, कृपलानी, डा. लोहिया के प्रजा समाजवादी पार्टी से निकाले जाने के बाद जब उन्होंने अपनी अलग पार्टी बनाई तो डा. आम्बेडकर की पार्टी के साथ उनकी पार्टी के विलय की बात चली किन्तु इससे पहले कि लोहिया और आम्बेडकर मुलाकात कर सकें और प्रस्ताव को अंतिम रूप दे सकें, डा. आम्बेडकर का आकस्मिक निधन हो गया और सारी योजना धरी की धरी रह गई। डा. आम्बेडकर के निधन के बाद उनका राजनैतिक आंदोलन बिखर गया।

लेकिन डा. लोहिया ने आम्बेडकर के सामाजिक और राजनैतिक कार्यक्रम को अपनी नई पार्टी के मंच से आगे बढ़ाया। हालांकि वे आम्बेडकर के अनुयायियों को अपनी पार्टी में आकृष्ट नहीं कर पाए, उन्होंने डा. आम्बेडकर के सामाजिक समता के कार्यक्रम को विशेष अवसरों के सिद्धांत का दार्शनिक आधार दिया। उन्होंने सभी दलितों को (स्त्रियों सहित) 60 प्रतिशत आरक्षण देने का सुझाव रखा और कहा कि सामाजिक समता के लिए विशेष अवसरों का सिद्धांत दुनिया में सब जगह अनिवार्य होगा। अब इस सिद्धांत को अमरीका, कनाडा और अन्य कई देशों में विभिन्न प्रकार की विषमताओं के समाधान के रूप में अपनाया जा रहा है। कहीं इसका नाम रिवर्स डिस्क्रिमिनेशन है तो कहीं तरजीही नियुक्तियां अथवा और कुछ।

जाति तोड़ो कार्यक्रम को डा. लोहिया ने अपने पांच प्रमुख कार्यक्रमों में प्रथम स्थान दिया और जातियों के स्थान पर वर्ग-निर्माण तथा वर्ग-संघर्ष को राष्ट्रीय प्रगति के लिए आवश्यक बताया। डा. लोहिया की भावना के अनुसार ही मंडल आयोग ने देश की सारी जनसंख्या को सवर्ण, पिछड़े, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के वर्गों में विभाजित किया और उनमें सत्ता के समान वितरण की योजना रखी। यदि मंडल आयोग की सिफारिशों के अनुसार देश की आबादी को चार अथवा पांच वर्गों में (जैसे सवर्ण, पिछड़ी किसान जातियां, पिछड़ी कारीगर जातियां, अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां) में विभाजित करके सबके लिए उनके जनसंख्या-अनुपात के आधे तक आरक्षण निश्चित कर दिए जाए और शेष स्थानों को खुली प्रतियोगिता के लिए छोड़ दिया जाए तो इससे न केवल सदियों से बना सत्ता-असंतुलन ठीक हो सकता है बल्कि दस हजार जातियों को कुछ दशकों में समाप्त करके वर्गों के रूप में बदला जा सकता है। मंडल आयोग की इन दूरगामी संभावनाओं को देखते हुए यह कहना गलत नहीं होगा कि डा. आम्बेडकर का सपना निकट भविष्य में साकार हो सकता है।

किन्तु राज-सत्ता पर अधिकार करने का डा. आम्बेडकर का सपना अभी दूर का सपना ही बना हुआ है। दलित वर्गों की आपसी फूट ने इसे लगभग असंभव बना दिया है। हालांकि डा. आम्बेडकर के अनुयायियों के सामने उनकी बताई हुई स्पष्ट लाइन है और इतिहास बताता है कि दलित-शक्ति के उभार में समाजवादी दल को छोड़ कर किसी भी अन्य राजनैतिक दल की सच्ची आस्था नहीं हो सकती, तथापि दलित वर्गों के नेता अपने-अपने स्वार्थों में पड़ कर डा. आम्बेडकर की कल्पना की सामाजिक तथा राजनैतिक क्रांति के मार्ग में बाधक सिद्ध हो रहे हैं।

हिन्दू समाज के कट्टर तत्वों ने आम्बेडकर का हमेशा विरोध किया लेकिन आम्बेडकर ने हिन्दू समाज को मजबूत करने के लिए कई महत्वपूर्ण काम किए। जब हिन्दू समाज के रवैये से तंग आकर उन्होंने धर्म-परिवर्तन का निश्चय किया तो अनेक प्रलोभनों के बावजूद उन्होंने इस्लाम, ईसाईयत या सिख धर्म को नहीं चुना। बौद्ध धर्म उदार हिन्दू धर्म का ही रूप है। उनके इस कदम से हिन्दू समाज दो-फाड़ होने से बच गया। दलित जातियों को आरक्षणों के रूप में सुरक्षा प्रदान करके डा. आम्बेडकर ने हिन्दू धर्म से अन्य धर्मों में जाने की प्रक्रिया को रोक दिया। अब छोटी जातियों द्वारा बड़े पैमाने पर धर्म-परिवर्तन नहीं होता। लेकिन इससे भी बड़ी बात यह है कि उन्होंने हिन्दू कोड बिल के द्वारा हिन्दू समाज में जो क्रांति लाई उसके लिए हिन्दू समाज उनका हमेशा के लिए ऋणी रहेगा। हिन्दू समाज के कट्टरपंथी लोग वैयक्तिक हिन्दू कानून में संशोधन के हमेशा-हमेशा विरोधी रहे हैं। आज भी ये कट्टरपंथी लोग समान नागरिक संहिता बनाने का हल्ला कर रहे हैं। समान नागरिक संहिता की बात करने वालों ने आज तक इस संहिता का कोई प्रारूप नहीं बनाया। वस्तुतः समान नागरिक संहिता हो ही नहीं सकती क्योंकि लगभग 80 करोड़ जनता के वैयक्तिक व्यवहार को शासन द्वारा नियंत्रित करना ही असंभव कल्पना है। डा. आम्बेडकर जानते थे कि सभी फिरकों को अपने-अपने वैयक्तिक कानूनों में स्वयं ही सुधार करने पड़ेंगे और इस दृष्टि से हिन्दू कोड बिल के रूप में पहल करके उन्होंने सब को रास्ता दिखाया है। समान नागरिक संहिता की बात करने वाले दरअसल वही लोग हैं जिन्होंने सती-प्रथा, विधवा-विवाह, बाल-विवाह और हिन्दू कोड बिल के सुधारों का विरोध किया था और उनकी रण-नीति है कि समान नागरिक संहिता का नारा उछाल कर हिन्दू समाज में चल रही सुधारों की प्रक्रिया को रोक दिया जाए। लेकिन अब कोई भी कट्टरपंथी डा. आम्बेडकर द्वारा शुरू की गई सामाजिक क्रांति को नहीं रोक सकता।

आम्बेडकर के अनुयायियों ने आम्बेडकर को पूजा की वस्तु बना कर अपना और समूचे भारतीय समाज का बहुत अहित किया है। इस समय उनके लिए सबसे बड़ा कर्तव्य यह होगा कि वे अपने भेदभावों को भुलाकर और समता पर निष्ठा रखने वाली राजनैतिक शक्तियों से सहयोग करके राजनैतिक सत्ता पर अपना अधिकार करें तथा इस समाज को सदियों की कारा से मुक्त करें।

79 बी, पाकेट 3,
मयूर विहार, दिल्ली-110091

सामाजिक अन्याय के चक्रव्यूह भेदक अभिमन्यु की तलाश!

डा. हरिवल्लभ त्रिवेदी

स्वतंत्र भारत के नेताओं ने एक ऐसे भारत का स्वप्न देखा था जिसमें जाति, धर्म, भाषा, सम्प्रदाय आदि अनेक भेदभावों से ऊपर उठकर हर नागरिक को सामाजिक न्याय मिले। उसे देश की प्रगति के पथ पर ले जाने में अपनी भागीदारी का मौका मिले। लेकिन लगता है हमारे इन महापुरुषों का स्वप्न अधूरा रहा है। आजादी के चार दशक बाद भी सामाजिक भेदभाव तथा अन्याय की घटनाएं हो रही हैं। देश में कमजोर वर्गों के लिए चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों का उल्लेख करते हुए लेखक ने यह बताने की भी कोशिश की है कि इन लोगों के सर्वांगीण विकास के मार्ग में क्या बाधाएं हैं। विद्वान लेखक का विचार है कि कमजोर वर्गों के लोगों के लिए चंद कार्यक्रम शुरू कर देना या उन्हें आरक्षण दिलाना ही काफी नहीं है। समाज में व्याप्त सामन्ती मानसिकता को समाप्त करना ज्यादा जरूरी है। अगर हम ऐसा कर पाए तो यह बाबा साहेब को सबसे बड़ी श्रद्धांजलि होगी।

नियति की मानव रचना में कहीं कोई अन्तर नहीं है। जन्म के समय किसी बालक में जाति, धर्म, भाषा या सम्प्रदाय का कोई बोध नहीं होता। बढ़ती उम्र के साथ हमारा समाज अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये उस बालक के मन में जाति, धर्म, भाषा तथा सम्प्रदाय के विष-बीजों को आरोपित करता रहा है जो कालान्तर में जातीय तथा साम्प्रदायिक संघर्षों के विशाल विष-वृक्ष का रूप धारण कर लेते हैं। हम भारतवासी अपनी सांस्कृतिक विरासत पर भले ही गर्व कर सकते हैं किन्तु जातिगत एवं साम्प्रदायिक संघर्षों के ऐसे अनेक कलंक हमारे माथे पर लगते रहे हैं जिनकी याद मात्र से हमारा सर शर्म से झुक जाता है। महान पुरुषों ने ऐसे मानव धर्म की स्थापना के लिए धर्मयुद्ध लड़े थे जिसके परिवेश में हमारे समाज के उन लोगों ने समाज की नींव रखने के स्वप्न संजोये होंगे जिसके शासक व्यापक जनहित से सरोकार रखने वाले मानव मूल्यों की स्थापना के लिये आवश्यकता पड़ने पर अपना सर्वस्व त्याग देने को तत्पर थे।

महात्मा गांधी के देश भारत में जब सामाजिक अन्याय की घटनाएं घटती हैं तो हर संवेदनशील नागरिक को दुख होना स्वाभाविक है। हमें ऐसा लगता है कि मानों हम अपने ही हाथों राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के रामराज्य के स्वप्नों, आधुनिक भारत के निर्माता पंडित नेहरू के जनतंत्रीय समाजवाद की स्थापना के वादों तथा सामाजिक न्याय स्थापना की बुलन्द आवाज के धनी बाबा साहेब भीमराव आम्बेडकर की कल्पना के भारत की एक साथ हत्या करने पर उतारू हो गये हों। इन तीनों ही युगपुरुषों ने भारतीय संविधान की प्रस्तावना में स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व तथा सामाजिक न्याय की स्थापना के वादों को शामिल करवाते हुए संभवतः यही सोचा होगा कि भारतीय समाज के सामन्ती सोच तथा आचरण के चक्रव्यूह में फंसे सामाजिक न्याय के लक्ष्य की रक्षा हमारे संविधान रूपी अभिमन्यु के हाथों हो सकेगी तथा इस देश के दलित समूहों को कालान्तर में किसी और अभिमन्यु के जन्म का इंतजार नहीं करना पड़ेगा। लेकिन वास्तविकता तो यही है कि अभी तक हम सामाजिक सह अस्तित्व की धारणा के मर्म को नहीं समझ पाये हैं। वृहद भारतीय समाज अभी भी किसी ऐसे अभिमन्यु की तलाश में है जो साम्प्रदायिक तथा सामन्ती सोच के लौह आवरण को हटा कर बता सके कि जातीय संघर्ष की घटनाओं में बहने वाले हर निर्दोष तथा कमजोर के खून का एक-सा लाल रंग है। इन सभी घटनाओं में आसुरी पौरुष की बू आती है तथा ये एक जनतंत्रीय समाज की न्याय स्थापना के उजले लक्ष्य को कलंकित करने के विभत्सकारी प्रयास प्रतीत होते हैं।

सामाजिक न्याय स्थापना के संवैधानिक प्रयास

सामाजिक न्याय स्थापना के लक्ष्य की चर्चा में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए विगत 42 वर्षों के योजनाकालीन प्रयासों का मूल्यांकन करना अत्यधिक प्रासंगिक होगा। इन दो जातीय समूहों के अलावा हाल ही में प्रधानमंत्री द्वारा संसद में मंडल आयोग द्वारा इंगित अन्य पिछड़ी जातियों को भी भारत में दलित वर्गों की श्रेणी में शामिल करने की घोषणा की है।

संविधान की व्यवस्था के अनुरूप हमारी विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सामाजिक तथा आर्थिक न्याय की स्थापना के लिये दलित वर्गों की जरूरतों के अनुरूप शिक्षा विस्तार तथा आर्थिक उत्थान के अनेक कार्यक्रमों को निरूपति किया गया तथा क्रियान्वित भी किया गया। दलित समूहों के सामाजिक उत्पीड़न को समाप्त करने तथा आर्थिक हितों की अभिवृद्धि के लिये सरकार द्वारा अनेक कानून पारित किये गये हैं। राजनैतिक आरक्षण तथा नौकरियों में आरक्षण की पुख्ता संवैधानिक व्यवस्था की गई है। इन वर्गों के त्वरित आर्थिक विकास हेतु विशिष्ठ योजनायें तथा विशिष्ठ संगठन बनाये गये हैं। बच्चों को शिक्षण संस्थाओं की तरफ प्रेरित करने के लिये छात्रवृत्तियां, मुफ्त स्टेशनरी, पुस्तकें, मुफ्त पोषाकें तथा दोपहर का भोजन दिया जाता है तो दूसरी तरफ कृषि भूमि के आवंटन के अभियान चलाये गये हैं। उन्हें काश्त के अधिकार दिये गये हैं। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत उन्हें उत्पादक परिसंपत्तियां अनुदान मूल्यों पर उपलब्ध करवायी गई हैं। दलित वर्गों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान को प्रभावित करने वाले ऐसे समस्त कार्यक्रमों पर केवल छठी योजना में ही 11,332 करोड़ रुपये खर्च किये गये थे तथा सातवीं योजना में करीब 12,225 करोड़ रुपये और खर्च किया जाना प्रस्तावित था। इस भारी भरकम खर्च से समाज के दलित वर्ग कितना लाभ उठा पाये हैं उसे समझने के लिए हमें सामाजिक-आर्थिक प्रगति के सारणी-1 के सूचकांकों पर गौर करना होगा।

सारणी-1 अनुसूचित जाति/जनजाति समूहों के सामाजिक-आर्थिक विकास सूचकांक

सूचक	अनुसूचित जाति	अनु. जन. जाति	अन्य जातियों का राष्ट्रीय औसत
1981			
1. साक्षरता	21.38	16.35	41.22
	(10.93)*	(8.04)*	(29.51)*
2. रोजगार श्रेणी			
(i) कृषक	28.17	54.43	41.50
(ii) कृषि मजदूर	48.22	32.67	25.20
(iii) गैर-कृषि कार्य	23.61	12.90	33.30
3. केन्द्र सरकार के समस्त कर्मचारियों का प्रतिशत			
1965	13.17	2.25	
1983	16.24	4.56	

*महिला साक्षरता प्रतिशत

तालिका से स्पष्ट होता है कि,

(i) हमारे दलित वर्ग के लोग शिक्षा सुविधाओं का अपेक्षाकृत कम उपयोग कर पाये हैं,

(ii) अनुसूचित जाति समूह अपनी जीविका के लिये मुख्य रूप से कृषि मजदूर के रूप में कार्य करने को विवश हैं।

(iii) जनजातियों की जीविका का प्रमुख आधार कृषि है। गैर-कृषि कार्यों में समाज के अन्य वर्गों की तुलना में दलित वर्गों का दखल कम है।

इन निष्कर्षों से यह जाहिर होता है कि भारतीय कृषि जिस सीमा तक मानसून का जुआ बनी रहती है उस सीमा तक दलित वर्गों के जीवन-यापन के साधनों में भी अनिश्चितता बनी रहती है तथा कृषि क्षेत्र में जिस प्रकार का सामन्ती शोषण प्रचलित है उसकी गाज दलित वर्गों पर ही गिरती है।

(iv) सरकारी सेवाओं में दोनों ही वर्गों का प्रतिनिधित्व अपेक्षाकृत कम है। अत: यह परिकल्पना की जा सकती है कि दलित वर्गों के कल्याण से जुड़ी योजनाओं की क्रियान्विती में इन लोगों की अपनी भागीदारी न्यूनतम है। इस संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि अनुसूचित जनजातियों के लोग अपने भौगोलिक परिवेश के कारण सामान्यतया उन शिक्षा सुविधाओं से महरूम रहे हैं जो बड़े गांवों तथा कस्बों में ही उपलब्ध होती है। निम्न शिक्षा स्तर के कारण ये वर्ग राजकीय सेवाओं में आरक्षण का पूरा लाभ भी नहीं उठा पाये हैं। दूसरी तरफ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अनुसूचित जातियों को छुआछूत तथा जातिभेद से सम्बद्ध समस्त यंत्रणाओं को अधिक भोगना पड़ता है क्योंकि इनके अलग गांव या बस्तियां नहीं। आमतौर पर ये वर्ग मिश्रित आबादी वाले गांवों में रहते हैं तथा जातिगत पुरातन श्रम विभाजन व्यवस्था इन पर कमोबेश लागू होती है। इसके विपरीत,

जनजातियों का सामान्यतः अपना अलग भौगोलिक परिवेश है, जहां अनेक अभाव हैं किन्तु अपने समूहों के कायदे कानूनों के बीच वे सम्मान की जिन्दगी जीते हैं। लेकिन विगत 40-42 वर्षों की विकास योजनाओं ने अब इन जनजातिय समूहों को भी समाज की मुख्य धारा से जोड़ा है। इससे इनके सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेश में बदलाव आया है, इनका स्वावलम्बी आर्थिक जीवन कमजोर हुआ है। समाज के अन्य वर्गों पर इनकी निर्भरता बढ़ी है तथा ये लोग भी शनैः शनैः सामाजिक अन्याय के शिकार होते जा रहे हैं।

यह संभव है कि इन दोनों जातीय समूहों की आर्थिक हैसियत देश के विभिन्न राज्यों में एक-सी न हो, किन्तु यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनकी पीड़ा दलित वर्गों ने समान रूप से न भोगी है। इन्हीं में से कोई समूह 'बंधुआ मजदूरी' की यातनाएं भोगता है तो किसी को अपने बेटे को घोड़े पर बिठाकर बरात निकालने की 'संजाये बर्बादी' झेलनी पड़ती है। दशाब्दियों पहले बाबा आम्बेडकर ने महान विचारक मोरिस को उधृत करते कहा था कि,

"हिन्दू समाज में महान लोग छोटों को दबाते हैं, ताकतवर कमजोरों को पीटते हैं, क्रूर लोगों के मन में किसी का डर नहीं, दयालू के मन में साहस नहीं और समझदारों के मन में किसी से सरोकार नहीं।"

आर्थिक कमजोरी से जन्मता सामाजिक शोषण

भारतीय समाज के इन दलित समूहों का सिर्फ इतना ही दोष है कि उन्होंने तथाकथित पिछड़ी जातियों में जन्म लिया तथा ऐसे कार्यों को समाज की खुशहाली के लिये अन्जाम दिया जिनके अभाव में समाज जी नहीं सकता। किन्तु फिर भी हमारा समाज उन कार्यों को घृणित मानता है तथा उनको अन्जाम देने वालों को अछूत। ब्रिटिश शासन से विरासत में मिले हमारे सामन्ती संस्कार आज भी बरकरार हैं। हमने ताकत के बूते पर इन दलितों को उन जमीनों से बेदखल कर दिया जिनसे वे अपनी जीविका कमाते थे। राजनैतिक तथा प्रशासनिक षड्यंत्रों द्वारा उन्हें उन सभी विकास योजनाओं के लाभों से वंचित रखा गया जिनको प्राप्त कर वे स्वावलम्बी बन सकते थे। जरूरत पड़ने पर दलितों के नव अभिजात्य वर्ग ने भी इस शोषण जनित व्यूहरचना की सफलता में भरपूर सहयोग दिया है। गैर-दलित वर्गीय सभी सामाजिक समूहों का एक ही साझा लक्ष्य रहा है कि ये लोग आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी न बन सकें ताकि न्यूनतम मजदूरी दरों पर श्रमिक उपलब्ध होते रहें एवं अपने सुविधाभोगी जीवन में कोई खलल न पड़े।

यदि ऐसा नहीं होता तो भूमि सुधार कानून असफल न होते। यदि अभिजात्य वर्गीय हमारी मानसिकता पवित्र होती तो न तो बीस सूत्री कार्यक्रम की जरूरत पड़ती और न ही अनुसूचित जाति/जनजाति विशेष भर्ती अभियानों की। भूमि सुधार कानूनों को संविधान की नवीं सूची में शामिल करने के लिए इतने वर्षों तक इंतजार क्यों करना पड़ा? यदि दलित समूहों के आर्थिक उन्नयन के प्रति हम प्रारंभ से ही प्रतिबद्ध रहे होते तो हमें न तो 'मंडल आयोग' नियुक्त करना पड़ता एवं न ही उसकी सिफारिशों को लेकर उभरते सामाजिक टकराव की स्थिति का मुकाबला करना पड़ता। हमारे संविधान निर्माताओं ने यह परिकल्पना की थी कि स्वतंत्रता आन्दोलन के जज्बातों से प्रभावित राजनेता अगले तीस वर्षों में दलितों को सामाजिक तथा आर्थिक न्याय दिलाने का भागीरथ प्रयास करेंगे जिसके फलस्वरूप विभिन्न जातीय समूहों के बीच की आर्थिक खाई पट जायेगी तथा 1980 तक आरक्षण की बैसाखी को ये जातियां स्वयं ही तोड़ कर फैंक देंगी। अफसोस की बात है कि हमारे संविधान निर्माताओं का यह सुखद स्वप्न पूरा नहीं हो पाया है तथा दुबारा आरक्षण की अवधि को बढ़ाना पड़ा है। इस कारण भारतीय समाज में दुराव बढ़ा है। देश का शासक वर्ग भारतीय संविधान रूपी अभिमन्यु को इतना सम्बल तथा संरक्षण प्रदान नहीं कर सका कि वह शोषण तथा अत्याचार की बहुचक्रीय दीवारों के गर्भगृह में फंसे दलित वर्गों को जनतंत्रीय समाज के अनुरूप सम्मानजनक जीविका के साधन मुहैया करा सके।

भारतीय राजनीति की विकृतियों का शिकार—सामाजिक न्याय

विगत 43 वर्षों से हम लोकतंत्रीय समाज के रूप में जी रहे हैं। जनतंत्र की भावना के अनुरूप हमारे आचरण तथा सोचने के ढंग में अन्तर नहीं आया। देश का किसान अपने को औद्योगिक शक्तियों का शिकार मानते हुए अपने आपको भारतीय राजनीति में एक दबाव समूह के रूप में संगठित कर रहा है। किसानों का संगठित होना एक शुभ संकेत होगा यदि ऐसे संगठन जातीयता की गन्ध से ऊपर उठें तथा अपनी ताकत के बूते पर लघु एवं सीमान्त कृषकों तथा कृषि मजदूरों के हितों के रक्षक साबित हों। अन्यथा दलितों को सामाजिक न्याय दिलाने की हमारी प्रतिबद्धता कुछ वर्षों के पश्चात पुनः एक खोखला नारा साबित होगी। इस नाजुक घड़ी में जनतंत्रीय संस्थाओं की अस्मिता की रक्षा करके इन्हें निष्पक्ष ढंग से कार्य करने योग्य बनाना आज की महती आवश्यकता है, अन्यथा भारतीय समाज वर्ग-संघर्ष की गिरफ्त में फंस सकता है।

डा. आम्बेडकर के स्वप्न का समाजवाद

डा. आम्बेडकर की राय में जाति व्यवस्था की बीमारी से मुक्ति पाये बिना हमारा देश न तो एक राष्ट्र के रूप में संगठित हो सकता है और न ही हम जनतंत्रीय समाजवाद की स्थापना की दिशा में कोई प्रगति कर सकते हैं। उनके मत में यदि हम सचमुच में अपने देश को एक जनतंत्रीय समाजवादी देश बनाना चाहते हैं तो हमें जातिगत सोच से ऊपर उठना होगा। राजनैतिक तथा प्रशासनिक सत्ता के शीर्ष बिन्दुओं से एक ऐसी प्रगतिशील सोच की भागीरथी प्रवाहित होना जरूरी है जिसकी धारा से सिंचित आर्थिक तथा सामाजिक विकास के वट-वृक्षों के फलों तक देश के हर आम आदमी की पहुंच हो। लेकिन भौतिक समृद्धि के लघु रास्तों की खोज में भटकते भारतीय समाज में ऐसी भागीरथी का प्रवाह तभी संभव है जब यहां का संवेदनशील बुद्धिजीवी वर्ग एकजुट होकर लोगों के दिमागों में वैचारिक क्रांति का बीजारोपण करे। यह वास्तव में एक दुरूह कार्य है तथा इसे हमारा दूरदर्शन या आकाशवाणी अंजाम देने की स्थिति में नहीं हैं। दूरदर्शन ने 'उपभोक्तावादी सोच' को पिछले चन्देक वर्षों में और अधिक बढ़ावा दिया है। जिसके फलस्वरूप ग्रामीण भारत में शीघ्र समृद्धि के रास्तों की खोज बढ़ी है।

समाचार पत्र तथा पत्रिकाएं भी जन चेतना के इस दुरुह कार्य को बहुत धीमी गति से अंजाम दे सकती हैं क्योंकि अल्पशिक्षित ग्रामीण भारत अभी इनकी पकड़ से बाहर है। ऐसी स्थिति में सामाजिक न्याय स्थापन के पक्षधर देश के संवेदनशील बुद्धिजीवी वर्ग का यह दायित्व बनता है कि वह गांधी के 'दांडीमार्च' की भावना को पुनर्जीवित करने में सक्रियता दिखायें। इस प्रकार की पद यात्राओं में राजनैतिक दलों को जितना कम शामिल किया जाये उचित रहेगा। पदयात्राओं के दौरान लोकभाषा में लोक माध्यमों का उपयोग करते हुए लोगों में जातिवाद, साम्प्रदायिकता तथा राजनीति में बढ़ते अपराधीकरण तथा वंशवाद के खतरों के प्रति जागरूकता पैदा की जा सकती है। उन्हें अपने कानूनी अधिकारों के प्रति सचेत करके कानून की लड़ाई के द्वारा न्यायप्राप्ति की प्रक्रिया की जानकारी देने के अलावा न्याय की लड़ाई में साथ देने वाली स्वयंसेवी संस्थाओं से परिचित करवाया जा सकता है।

भारत की साख दुनिया में सर्वाधिक प्रगतिशील कानून बनाने वाले देश के रूप में है लेकिन फिर भी इसके माथे पर एक विकासशील राष्ट्र का पैबन्द लगा हुआ है। अतः हमें अब दलित वर्गों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिये नये कानून बनाने के बजाय कुछ ठोस कदम उठाने की जरूरत है। किसी स्थान पर बाबा साहेब की मूर्ति स्थापना समारोहों का राजनैतिक महत्व हो सकता है किन्तु उस महान आत्मा को सच्ची श्रद्धांजली तो यही होगी कि हम अपने सामन्ती आचरण को बदलें, वंश तथा जातिगत लाभों से ऊपर उठें, दलित वर्गों को आत्म निरीक्षण करने के लिये प्रेरित करें तथा यह समझाने में कामयाब हों कि 'अनुदान तथा आरक्षण' की बैसाखियां मात्र आकस्मिक उपचार हैं तथा इसे स्थायी इलाज के रूप में नहीं अपनाया जा सकता है। जब तक ऐसी सुविधायें रहेंगी समाज के स्वार्थी, शक्तिशाली तथा चालाक समूह कोई न कोई ऐसी रीति खोज निकालेंगे जिससे अनुदान एवं आरक्षण के घड़े में से अच्छा खासा रिसाव संभव हो जाए।

सरकार तथा प्रशासन की सामाजिक न्याय की स्थापना के प्रति निष्ठा इस बात से परखी जायेगी कि देश अगले कुछ वर्षों में दलित उत्पीड़न के जिम्मेवार सामन्ती तत्वों को किस सीमा तक कुचल सका है, राजनीति में अपराधीकरण को नियंत्रित करने की क्या पुख्ता व्यवस्था विकसित हो सकी है तथा विकेन्द्रित आर्थिक विकास की व्यूह रचना बनाने तथा लागू करने के वादों पर किस हद तक अमल हो पाता है? डा. आम्बेडकर ने खूनी संघर्ष का बिगुल कभी नहीं बजाया। उनके स्वप्नों के समाजवाद में सम्मानजनक सामाजिक सहअस्तित्व की धारणा निहित है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सामाजिक न्याय की किसी ऐसी नयी परिभाषा घड़ने की जरूरत नहीं जिसमें अल्पसंख्यक तथा दलित वर्गों के लिये तुष्टीकरण की गन्ध आती हो।

सामाजिक तथा आर्थिक न्याय प्राप्ति की व्यग्रता से झुलसते आम भारतीय नागरिक ने बार-बार अपनी राजनैतिक परिपक्वता का परिचय देते हुए सरकारें बनायी तथा बदली हैं। 1989 के आम चुनावों में उसने नये मूल्यों पर आधारित राजनीति के सहारे सम्मानजनक जीविका उपलब्ध करवाने का वादा किया है। पिछले सात-आठ माह के राजनैतिक झंझावतों के बावजूद भी अभी आम आदमी का विश्वास सुनहरे कल की आशा में टिका हुआ है क्योंकि देश का वर्तमान शासन बाबू जयप्रकाश नारायण तथा डा. राम मनोहर लोहिया जैसे समाजवादी राजनेताओं को अपना प्रेरणास्रोत मानता है। आम भारतीय की नजर में वर्तमान शासन की सबसे बड़ी कसौटी यही है कि यह किस हद तक जातीयता के विष वृक्ष की घिनौनी बू से दलित वर्गों को बचा सकता है? हम आशा करें कि देश के दलित वर्गों का सामाजिक तथा आर्थिक न्याय प्राप्ति का स्वप्न अब शीघ्र पूरा हो सकेगा तथा हमें गांधी अथवा आम्बेडकर के पुनर्जन्म का इंतजार नहीं करना पड़ेगा।

अर्थशास्त्र विभाग, एम. एल. वर्मा, राजकीय स्वायत्तशासी महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राजस्थान) पिन-311001

सामाजिक न्याय—कितना वास्तविक

अनुसूचित जाति व जनजाति आयोग की पिछली (28वीं रिपोर्ट) में इस महत्वपूर्ण बात को उठाया गया था कि हमारे देश में एक दोहरी व्यवस्था पनप रही है। एक तरफ तो आधुनिक संगठित क्षेत्र का ऊपरी वर्ग है तथा दूसरी तरफ असंगठित, बिखरे हुए क्षेत्र का निचला वर्ग है। इसी प्रकार अनुसूचित जातियों व जनजातियों में भी दो अलग-अलग हिस्से उभरते नजर आ रहे हैं। आधुनिक संगठित क्षेत्र हमारी विकासशील अर्थव्यवस्था का अग्रणी क्षेत्र है, इसलिए यह सबकी आशाओं का केन्द्र बिन्दु बना हुआ है। स्वाभाविक है कि अनुसूचित जातियों व जनजातियों को भी इस पूरी व्यवस्था, विशेषकर संगठित क्षेत्र में समान अवसर मिलने चाहिए। इस सम्बन्ध में पिछली रिपोर्ट में व्यापक सिफारिशें की गयी थीं। विकास के क्रम में इनकी सही हिस्सेदारी केवल सरकारी नौकरियों में आरक्षण तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए बल्कि राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में इनकी न्यायोचित भागीदारी होनी चाहिए। संविधान भी यही कहता है।

अन्याय पूर्ण दोहरी व्यवस्था

विडम्बना यह है कि मूलतः यह दोहरी व्यवस्था स्वयं ही अन्याय को पोषित करती है। ऐसी व्यवस्था में समता व न्याय के नाम पर भागीदारी स्वयं में अनुचित लाभों की हिस्सेदारी ही होगी। फिर अगर इन लोगों को हिस्सा देने का काम पूरी ईमानदारी से किया भी जाए तो भी इन लोगों अर्थात् कमजोर वर्गों के कुछ हिस्से को ही फायदा होगा। इन वर्गों के अधिकांश लोगों पर जो सबसे निचले स्तर पर हैं। वंचना व शोषण का बोझ बढ़ता जाएगा। इस प्रकार बड़ी विचित्र स्थिति बन जाती है। एक ओर तो न्याय के नाम पर अन्याय में भागीदारी ठीक दिखायी देने लगती है। दूसरी ओर ऐसे वातावरण में व्यापक हितों की अनदेखी तो क्या, उनका विरोध भी उचित दिखायी पड़ने लगता है। अतः समता व न्याय दिलाने की प्रक्रिया जब तक समाज के सबसे नीचे के वर्ग से शुरू नहीं होती तब तक संविधान में निहित तमाम आरक्षणों का कोई अर्थ नहीं है।

इन अधिसंख्य लोगों का जीवन तीन बातों से जुड़ा हुआ है। संसाधनों पर अधिकार, उत्पादन के साधनों पर अधिकार व मेहनत की हकदारी। खेद का विषय है कि इन अहम बातों पर बहस या तो बिल्कुल नहीं हुई या फिर हुई है तो बहुत सतही। आधुनिकता, प्रगति, विकास के नाम पर पनप रहे निहित स्वार्थ वाले वर्ग इन सवालों से बचते हैं। लेकिन ये सवाल कमजोर वर्गों के हितों के लिए निर्णायक हैं। साथ ही ये हमारे राष्ट्रीय जीवन की गुणवत्ता उसके मूल सिद्धांतों व मानवीय मूल्यों के लिए भी निर्णायक हैं।

तीन व्यवस्थाएं—चिंता का विषय

हमारे राष्ट्रीय जीवन की स्थिति आज बहुत चिंताजनक है। हमारी व्यवस्था में ध्रुवीकरण बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। एक तरफ तो संगठित क्षेत्र का वातावरण है, जिसमें पहुंचते ही व्यक्ति रोजी-रोटी के बारे में निश्चिंत हो जाता है। व्यवस्था स्वयं उसके हितों को संरक्षित रखती है। व्यक्ति को तो केवल अपनी जगह बनाए रखने की, सुविधा व आराम में हिस्सेदारी की तथा विकास के रेले में आगे बढ़ते रहने की चिंता करनी होती है। दूसरी ओर असंगठित क्षेत्र है जिसमें साधारण व्यक्ति के सामने प्रतिदिन रोटी का सवाल तलवार बनकर लटका रहता है। इस असंगठित क्षेत्र में साधन-सम्पन्न अपने हितों के लिए सतर्क लोगों का एक वर्ग भी मौजूद है जो आधुनिक संगठित क्षेत्र में पहुंचने, वहां की सुख-सुविधाओं को पाने के सतत् प्रयास में रहता है। इस प्रकार असंगठित क्षेत्र में छीनाझपटी, आपा-धापी संघर्ष का माहौल व्याप्त है।

इस माहौल में हमारी अर्थव्यवस्था में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति राज्य के अधीन लाने की प्रवृत्ति आग में घी काम काम कर रही है। साधाण लोगों के पास जो कुछ बचा-खुचा है वह भी कानून, ताकत, पैसे के बल पर उनसे छीना जा रहा है। इधर से छीन कर उधर पहुंच रहा है। इस प्रकार हमारे देश में तिहरी व्यवस्था बनती जा रही है।

असंगत कानून

समाज की इस चिंताजनक स्थिति के दो मूल कारण हैं—

हमारा कानूनी ढांचा तथा विकास की अवधारणा। हमने पश्चिमी देशों के विकास मार्ग को अपना आदर्श मान लिया है और विकास की हड़बड़ी में हमने 'विकास पहले' को मूलमंत्र करार दिया है तथा सामाजिक न्याय को पीछे कर दिया है। इस ओर ध्यान ही नहीं दिया गया कि पहली और दूसरी दुनिया के विकास के लिए तीसरी दुनिया का दोहन हुआ है और हो रहा है तथा ठीक इसी तरह तीसरी दुनिया का पोषण 'चौथी दुनिया' — अर्थात् एकदम बेसहारा, साधनहीन, शक्तिहीन, निम्नतम, सर्वहारा वर्ग के शोषण से ही होगा।

यह व्यवस्था पूरी तरह अन्यायपूर्ण है, परन्तु दुर्भाग्य से हमारा कानूनी ढांचा भी इसी का पोषक बन गया है। यह ढांचा मोटे तौर पर ब्रिटिश शासन के दौरान तैयार किया गया था। इसकी मूल मान्यताएं पश्चिमी समाज की मान्यताएं थीं तथा व्यवस्था उस समय राज का प्रतीक थी। स्वाधीन होने पर हमने अपनी परम्परा, अपने मानवीय मूल्यों के आधार पर समाजवादी समाज की संरचना के लिए संविधान बनाया, परन्तु व्यवस्था वही रही। व्यवस्था दरअसल संविधान की मूल चेतना के अनुकूल बिल्कुल नहीं थी। आगे चलकर तो यह असंगति बढ़ गयी। नये शासक वर्ग को पुरानी व्यवस्था अपने अनुकूल लगने लगी। विकास की हड़बड़ी में बेमेल बातों की न केवल अनदेखी कर दी गयी बल्कि इन्हें नयी व्यवस्था को चलाने तथा प्रगति के लिए आवश्यक भी मान लिया गया। कानून तथा नियम तो ठोस होते हैं, परन्तु मानवीय मूल्य निराकार होते हैं व विचार तथा विवेचन के विषय होते हैं। इसलिए कानूनी तिनकों की ओट में संविधान या मानवीय अधिकारों के उल्लंघनों के पहाड़ के पहाड़ ओझल बने रहते हैं।

उजड़ते आदिवासी

मानवीय अधिकारों में सबसे अहम् व पवित्र अधिकार है जीने का अधिकार। जीने का मतलब केवल जिन्दा रहने से नहीं है बल्कि मानवीय प्रतिष्ठा के साथ जीवन बसर करने का है। उसके लिए व्यक्तिगत आजादी तथा जीविका के उपयुक्त साधन आवश्यक हैं। आज के समाज में इनको औपचारिक रूप से बुनियादी अधिकारों की संज्ञा दी जाती है, परन्तु आदिवासी समाज के लिए आज की हालत में इन औपचारिक व्यवस्थाओं का कोई अर्थ नहीं है। वे अपनी समझ, अपनी परम्परा के अनुकूल स्वशासी व्यवस्था को अनिवार्य मानते हैं। यह एक बड़ी भारी विडंबना है कि जो शांतिप्रिय आदिवासी समाज प्रतिष्ठा के मामले में सबसे अधिक स्वाभिमानी रहा है। उसकी हालत आज अत्यंत शोचनीय है। संसाधनों पर उनके अधिकार की अवमानना, उनकी परम्परागत स्वशासी व्यवस्था को नकारने से आदिवासी समाज सर्वशक्ति सम्पन्न व्यवस्था के सामने एकदम बेसहारा हो गए हैं। वनवासी युगों से वनों में और वनों से जीवन बसर करते आए हैं, परन्तु अब वन चूंकि राज्य की सम्पत्ति हैं, इसलिए उनका वहां रहना अपराध हो गया, उनका वनों में बने रहना कानून के खिलाफ हो गया। अगर आदिवासी हाथ में धनुष-बाण लेकर जंगल में पहुंच जाए तो अपराधी हो जाता है। उसके जानवर खुलकर जंगल में चरने लगें तो पकड़ लिए जाते हैं। उसकी जमीन उसके नाम में नहीं है। अगर वह परम्परा के अनुसार अपने आराध्य देव की पूजा में अपने पर्व-उत्सव में मदिरा का सेवन कर लें तो अपराधी मान लिया जाता है। जीवन के हर मामले में उसे केवल इसलिए अपराधी माना जा रहा है क्योंकि कानून उसके खिलाफ है। आदिवासी इलाकों में पूरे समाज का ही अपराधीकरण हमारे देश की उदार परम्परा पर सबसे बड़ा धब्बा है।

आदिवासी विस्थापन

विकास के दौर में सबसे अधिक हानि आदिवासियों व साधन-हीन लोगों को हुई है जिनमें अधिकतर अनुसूचित जातियों के हैं। सभी संसाधनों को सम्पत्ति के रूप में मान लेने से इन लोगों के अधिकारों पर कुठाराघात हुआ है। सबसे बड़ी विडंबना तो यह है कि विकास के क्रम में भूमि अधिग्रहण अधिनियम जैसे 19वीं शताब्दी के उस औपनिवेशिक कानून का खुला सहारा लिया जा रहा है जिसमें लोगों के जीवन के अधिकार की कल्पना नहीं है बल्कि राज्य की इच्छा को जनहित माना गया है। भूमि अधिग्रहण कानून अधिसंख्य गरीबों से उनके जीवन के आधार रूप प्राकृतिक संसाधन वन पर जमीन को छीनकर नयी व्यवस्था के उपयोग के लिए कच्चा माल बनाकर खड़ा कर देता है। इस कानून में इन संसाधनों के तथाकथित मालिकों के अलावा बटाईदार, खेत मजदूर, चरवाहे, बहेलिये, केवट, आदि के कहीं अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की गयी है। इसमें यह अहसास ही नहीं है कि किसान के लिए खेत मेहनत, मजदूरी करके जीवन चलाने का आधार है। अपनी जमीन से जुड़ा किसान कहां जाएगा अपनी मेहनत बेचने के लिए, इस कठोर यथार्थ की कहीं कोई चर्चा नहीं होती।

भूमि अधिग्रहण कानून में संपत्ति का विनिमय है। जीविका के आधार की कल्पना नहीं है। इसलिए यह कानून संविधान की भावना के अनुरूप नहीं है। विस्थापन के मामले में आदिवासी क्षेत्रों की स्थिति विशेष रूप से चिंताजनक है। भूमि अधिग्रहण कानून से आदिवासी समाज के संवैधानिक अधिकारों का ही नहीं बल्कि मूल मानवीय अधिकारों का भी उल्लंघन होता है। सबसे बड़ी विडंबना तो यह है कि इन सरल स्वभावतः शांतिप्रिय लोगों की सामाजिक सुरक्षा के संवैधानिक दायित्व को नकारने में राज्य को कोई हिचक नहीं होती क्योंकि उसने

तथाकथित विकास की जिम्मेदारी अपनी कंधों पर लाद रखी है। विकास के बढ़ते चरणों के साथ आदिवासी क्षेत्रों में तो खुशहाली आती है लेकिन खुद आदिवासी के चारों ओर बिखराव तथा फटेहाली व्याप्त हो जाती है। बेसहारा आदिवासी को जंगल में भी ठिकाना नहीं मिलता। अंततः उसे दूसरे क्षेत्र में भूमिहीन मजदूर बनकर या शहर में फुटपाथ या गंदी बस्ती में जगह मिल पाती है। यही त्रासदी है आदिवासी इलाकों के विकास की। अतः प्राकृतिक संसाधनों के नए उपयोग की एक अनिवार्य पूर्वशर्त यह होनी चाहिए कि सरकार ऐसे लोगों के आगे जीवनयापन के लिए जो दूसरी व्यवस्था करे वह पहले से निश्चित रूप से बेहतर हो। इससे भी अधिक आवश्यक यह है कि प्रभावित लोग स्वयं भी यह महसूस करें कि उनके लिए नया विकल्प अच्छा होगा और इसके लिए वे अपनी इच्छा से पूरी तरह तैयार हों। सच तो यह है कि हम राष्ट्रीय जीवन में ऐसे मोड़ पर पहुंच गए हैं जहां विकास की अवधारणा तथा इसमें लोगों की भागीदारी के बुनियादी सवालों पर नये सिरे से बहस होनी चाहिए। अनुचित परम्परा असंगत विकास तथा अवांछनीय केन्द्रीयकरण से देश के अधिसंख्य लोग साधनहीन हो रहे हैं, उनका सब कुछ छिनता जा रहा है।

जीवन के अधिकार की अवहेलना

व्यक्ति को सम्मान से जीने के लिए मूलतः पांच तत्व आवश्यक होते हैं—सामाजिक व्यवस्था, संसाधन, उत्पादन के साधन, मेहनत की सही हकदारी तथा व्यक्तिगत आजादी। मानव समाज में यही अधिकार बुनियादी हैं। ये ही लोकतंत्र की आत्मा हैं। इन मूल्यों को संविधान में असंदिग्ध रूप से प्रस्थापित किया गया है। लेकिन व्यवहार रूप में आम आदमी के जीवन के अधिकार की अनदेखी ही नहीं बल्कि भारी अवमानना हो रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि ब्रिटिश काल में जीवन के आधार के तौर पर संसाधनों की बजाय सम्पत्ति को कानूनी मान्यता दे दी गई। यह विडम्बना है कि संविधान से सम्पत्ति का मौलिक अधिकार हट जाने तथा उसमें जीवन के अधिकार के स्पष्ट रूप में प्रस्थापित होने के बावजूद व्यवहार में कानून का उपनिवेशवादी रूप कायम है। इसीलिए आम आदमी के जीवन के संवैधानिक व मानवीय अधिकार तथा ताकतवर लोगों के संपत्ति के कानूनी अधिकार के बीच हमारे राष्ट्रीय जीवन में कदम-कदम पर टकराव है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजों के जमाने में संसाधनों के अनैतिक बंटवारे में स्वयं राज्य तथा उसके साथ कुछ लोग जमीन सहित अन्य प्राकृतिक संसाधनों के मालिक बन गए। दूसरी ओर साधारण व्यक्ति जो इन संसाधनों का उपयोग करके युगों से जीवन बसर कर रहा था वह जीवन-यापन के इस नैसर्गिक अधिकार से वंचित होता गया। जब हमारे संविधान में राज्य पर सामाजिक न्याय की जिम्मेदारी डाली गयी है तो फिर यह सब कैसे हो रहा है? मोटे तौर पर राज्य की तीन मुख्य भूमिकाएं हैं—व्यवस्था संरक्षण तथा विकास व्यवस्था को बनाए रखने की चिंता, विकास की हड़बड़ी व उसकी चकाचौंध में गरीबों विशेषकर अनुसूचित जातियों व जनजातियों के संरक्षण की जिम्मेदारी भुला दी जाती है। नीति, सिद्धांत व कानून के साये में निहित स्वार्थों का साथ देने में भी संकोच नहीं किया जाता। आज की स्थिति को निकट से देखने पर वंचना के पांच स्तर स्पष्ट दिखाई देते हैं—1. संसाधनों पर अधिकार की अवमानना व उनके उपयोग से रोकना। 2. उत्पादन के साधनों का अलगाव। 3. मेहनत की हकदारी को नकारना। 4. व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विनिमय तथा 5. वंचना व शोषण की स्थिति को नियति मानने की मनःस्थिति। व्यक्ति की इज्जत व प्रतिष्ठा उसके काम से, काम की मान्यता से, उत्पादन के साधनों पर अधिकार से तथा अपनी व्यवस्था स्वयं चलाने के अधिकार से बनती है। इन सभी मामलों में अनुसूचित जातियों की हालत पहले ही खराब थी। मेहनत उनके हिस्से में आती रही है और संसाधन दूसरों के। स्वतंत्रता के बाद व्यवस्था व ताकतवर लोगों के गठजोड़ के सामने ये लोग और अधिक मजबूर हो गए हैं।

हकदारी

इस समय संगठित क्षेत्र देश के सकल उत्पादन में से पहले अपने लिए मनमानी हकदारी के आधार पर अधिक से अधिक हिस्सा निकाल लेता है। सच तो यह है कि असंगठित क्षेत्र में मेहनतकश लोगों की, जिनमें किसान भी शामिल हैं, मेहनत का सही मूल्यांकन आज तक नहीं हुआ है। विडंबना यह है कि कृषि प्रधान हमारे देश में सबसे कुशल, सबसे कठिन, सबसे खराब स्थितियों में काम करने वाले खेत मजदूर को अकुशल कामगार का दर्जा दिया गया है। कमोबेश यही बात असंगठित क्षेत्र के सभी परम्परागत व्यवसायों के कारीगरों की है। इन सबके कौशल को अकौशल तथा ज्ञान को अज्ञान मान लिया गया है।

संगठित तथा असंगठित क्षेत्रों में वेतन व मजदूरी की दोहरी व्यवस्था बिल्कुल असंवैधानिक है लेकिन इस पर आज तक कहीं कोई चर्चा नहीं हुई है। अगर साधारण आदमी के लिए सही अर्थों में न्याय किया जाना है तो सबसे पहले खेत मजदूर के लिए सही मजदूरी तय करनी होगी। इससे किसान की फसल के दाम ऊंचे होंगे और अंततः असंगठित क्षेत्र में मेहनतकशों की हकदारी बढ़ेगी। इस प्रकार संगठित व असंगठित क्षेत्र के बीच

एक नया संबंध कायम करना होगा। असंगठित क्षेत्र के मजदूरों में अधिसंख्यक लोग अनुसूचित जातियों के हैं। इनके पास अपनी मेहनत व कौशल के सिवाय और कुछ नहीं है। उनकी मेहनत की हकदारी की लड़ाई ही इंसाफ की लड़ाई है। संगठित क्षेत्र में मजदूरी के जो सिद्धांत मान्य हैं, उनके अनुसार खेत मजदूर की मजदूरी दर भी इतनी हो कि उसकी औरत व बच्चों को काम करने के लिए विवश होकर बाहर न जाना पड़े। वह भी किसी अन्य नागरिक की तरह अपनी कमाई से पूरे परिवार का पेट भर सके।

उत्पादन के साधनों पर अधिकार

अधिकतर आदिवासी व अनुसूचित जातियों के लोग किसी न रूप में खेती पर निर्भर हैं। परन्तु जमीन पर अधिकार के मामले में स्थिति अभी चिंताजनक है। सबसे अधिक गड़बड़ आदिवासी इलाकों में हो रही है। पहले तो कई क्षेत्रों में अभी कोई दस्तावेज ही नहीं है, इसलिए गांव में किसकी जमीन कहां पर है, यह कागज पर नहीं है। आज के कानून में जिस जमीन पर किसी का नाम दर्ज नहीं है, वह सरकारी जमीन मान ली जाती है। लेकिन कागज पर नाम चढ़वाने से ही जमीन पर मिल्कियत हो जाती है। इसका बाहरी तत्वों ने खूब फायदा उठाया है। आज कागज ही लोगों के खिलाफ नहीं बल्कि पूरी व्यवस्था ही उनके खिलाफ है। जमीन की जोत व मिल्यिकत की जानकारी तो गांव में मिल सकती है लेकिन जमीन के झगड़ों का फैसला अदालत में होता है। वहां साधारण व्यक्ति को न्याय मिलने की कोई आशा नहीं रहती। वह कुछ नहीं कर सकता, अतः लाचार है।

अनेक इलाकों में विशेषकर जहां कारखाने बन रहे हैं, अराजकता की स्थिति बन गयी है। उत्तर प्रदेश में सोनभद्र का मामला बड़ा ही खेदजनक है जहां सेटलमेंट के नाम पर लूट मची हुई है। वहां राज्य के आदेश व न्यायालयों के फैसले भी आदिवासी की जमीन बचाने में असमर्थ हैं। जब तक इस व्यवस्था में मूल परिवर्तन नहीं होता जब तक जमीन पर अधिकार के मामलों के सभी फैसले गांव में ही गांव के लोगों के बीच नहीं होते, तब तक आदिवासी को न्याय नहीं मिलेगा।

जोत की जमीन के मामले के संघर्ष मूलतः दो अधिकारों के बीच टकराव है—एक ओर जीवन का अधिकार तथा दूसरी ओर संपत्ति का अधिकार। जीवन का अधिकार सम्पत्ति के अधिकार से बहुत ऊंचा है। जहां कोई आदमी जमीन जोतकर जीवन बसर कर रहा है, अगर सरकार उसे उस जमीन की मिल्कियत नहीं दिला सकती तो कम से कम उस पर काबिज रहकर जीवन बसर करने के अधिकार की रक्षा तो की ही जा सकती।

संसाधनों पर अधिकार

परम्परागत व्यवस्था में मुख्य सार्वजनिक संसाधन वन, चारागाह (पड़ती भूमि) व पानी है जिन पर साधारण लोग अपने जीवन के लिए निर्भर हैं। सभी तरह के संसाधनों पर गलत हकदारी अंग्रेजी शासन में शुरू हुई, जब स्थानीय समाज और व्यक्ति का इन संसाधनों से पोषक पोषित का रिश्ता समाप्त कर दिया गया और इनके संरक्षण के नाम पर इन राज्य का एकाधिकार हो गया। केन्द्रीयकरण की यह प्रवृत्ति स्वाधीनता के बाद विकास की नयी अवधारणा के साये में मजबूत होती गयी। इस तरह वनों के संबंध में हमारे देश की व्यवस्था में संवैधानिक संरक्षण तथा मानवीय अधिकारों की अनदेखी हुई है। यही आदिवासी समाज की सबसे अधिक दुखती रग है।

वनों का विनाश जारी

वनों के आरक्षण से वनों का बचाव नहीं हुआ है। कुछ तो आबादी और लोगों की आवश्यकताएं बढ़ने से वनों पर दबाव बढ़ा है। पर सबसे अधिक क्षति बाहरी दबाव से हुई है। वैज्ञानिक प्रबन्ध के नाम पर प्राकृतिक वनों को काटकर एक जातीय पेड़ों के बागान, चाय, काफी, इलायची आदि के बागान लगाना, उद्योगों के नाम पर कौड़ी के मोल वन उपज पट्टे पर देना, विकास के नाम पर उद्योगों व खनिज परिसरों की स्थापना, राजमार्गों का निर्माण, बाहरी लोगों की भीड़, आदिवासियों की बेदखली, शहरी आवश्यकताओं की पूर्ति, ये सब वनों पर अत्यधिक बोझ साबित हुई हैं। वनों की हालत आज एक ऐसी सार्वजनिक सम्पत्ति की तरह हो गयी है जिसे कोई देखने-सुनने वाला नहीं है।

हमारे संसाधनों के समाप्त होने का मुख्य कारण है बढ़ती हुई असमानता व उफनता उपभोगवाद। अतः सबसे बड़ी आवश्यकता उपभोगवादी व्यवस्था पर अंकुश लगाने व प्राकृतिक संसाधनों पर हकदारी के न्याय की है।

बंधुवा मजदूरी

जीवन के अधिकार की सबसे बड़ी अवमानना बंधुवा मजदूरी है। सरकारी आंकड़ों व व्यापक योजनाओं के बावजूद कई क्षेत्रों में स्थिति बड़ी सोचनीय है। तमिलनाडु के काफी बागान, डाल्टनगंज व चम्पारन में बड़े-बड़े फार्म, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि में भट्टे, कारखाने, खानें—मानव अधिकारों की खूनी अवहेलना के ये और ऐसे अन्य केन्द्र खेद की ही नहीं, बड़े शर्म की बात है पूरे देश के लिए।

(शेष पृष्ठ 37 पर)

भारत में सामाजिक न्याय—एक विश्लेषण

डा. गिरिजा प्रसाद दुबे

सामाजिक न्याय एक व्यापक अवधारणा है। इसके पीछे सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों का पक्ष लेने और उन्हें हर प्रकार की समानता दिये जाने की बात छिपी है। स्वतंत्र भारत के संविधान में सभी नागरिकों को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समानता की गारंटी दी गयी है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था को न्यायसंगत बनाने की बात हमारे संविधान निर्माताओं को अचानक नहीं सूझी। आजादी की लड़ाई के समय से ही इस संबंध में हमारे नेता सोचने लगे थे। आजादी के बाद के वर्षों में सामाजिक व्यवस्था में वांछित बदलाव न आने के कारण सामाजिक और आर्थिक लक्ष्य पूरे नहीं किये जा सके हैं। इस लेख में स्वतंत्रता के बाद सामाजिक न्याय दिलाने के विभिन्न प्रयासों का विवेचन और मूल्यांकन किया गया है।

"देश भक्ति और एकता ही किसी मुल्क की ताकत की बुनियाद होती है और एकता बनती है समानता और न्याय के आधार पर। हर आदमी को यह महसूस करना चाहिए कि देश के भले में उसका भला है और देश के बुरे में उसका बुरा है और यह तभी संभव है जब सबको समान अधिकार और सबको समान सुविधाएं हों, सबको बराबर का न्याय मिलता हो।" ये विचार महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी खान अब्दुल गफ्फार खां के हैं। इस दृष्टि से हम जब अपने देश की स्थिति पर विचार करते हैं तो यहां सामाजिक न्याय का एक काल्पनिक स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है।

सामाजिक न्याय एक व्यापक अवधारणा है। इसके पीछे सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों का विशेष पक्ष लेने, विभिन्न क्षेत्रों में अवसर प्रदान करने और हर प्रकार की बराबरी दिए जाने सम्बंधी बातें छिपी हुई हैं। दूसरे शब्दों में सामाजिक और आर्थिक रूप से विपन्न वर्ग को जो हर प्रकार के विकास के अवसर से वंचित हैं उन्हें विशेष अवसर और सुविधा प्रदान कर अन्य वर्गों के बराबर लाना एवं सामाजिक व्यवस्था को अधिक मानवीय और न्याय संगत आधार प्रदान करना सामाजिक न्याय के उद्देश्य माने जा सकते हैं। हर प्रकार की राजनीतिक प्रणालियां न्याय संगत सामाजिक व्यवस्था प्रदान करने की पक्षधर होने की बात तो करती हैं परन्तु किन्हीं कारणों से वे ऐसा नहीं कर पाती हैं। महात्मा गांधी जैसे महापुरुष भी हिंसा विहीन साम्यवाद के समर्थक थे। उन्हीं के शब्दों में "यदि साम्यवाद बिना हिंसा के आये तो वह स्वागत योग्य है क्योंकि तब सम्पत्ति किसी एक व्यक्ति की नहीं होगी बल्कि उस पर जनता का स्वामित्व होगा और वह जनता के लिए होगी। करोड़पति अपने धन को अपने पास रख सकता है। लेकिन वह लोगों के लिए ही उसे अपने पास रखेगा। जब भी राज्य को लोगों के काम के लिए उस धन की आवश्यकता होगी तो सरकार को उसे लेने का अधिकार होगा।"

भारतीय संविधान—समता एवं सामाजिक न्याय

स्वतंत्र भारत का संविधान सभी नागरिकों के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समानता का हिमायती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद (14) से (18) द्वारा प्रत्येक भारतीय नागरिक को समता का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 14 यह व्यवस्था करता है कि भारत राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा। अनुच्छेद (15) धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान के आधारों पर विभेद का प्रतिषेध करता है। अनुच्छेद 16 सार्वजनिक नियोजन के मामलों में अवसर की समानता की गारण्टी करता है। अनुच्छेद (17) अस्पृश्यता का उन्मूलन करता है और अनुच्छेद (18)

उपाधियों का उन्मूलन करता है।

संविधान में भारतीय सामाजिक व्यवस्था को न्याय संगत आधार प्रदान करने की बात उसके निर्माण के समय एकाएक जन नेताओं के मन में नहीं आयी थी बल्कि गांधी सरीखे राष्ट्रीय नेता स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई के समय से ही इसे सोचते और कहते रहते रहे। उस समय महात्मा गांधी कहा करते थे कि "हम अंग्रेजों को देश से इसलिए नहीं हटाना चाहते हैं कि उनकी चमड़ी का रंग गोरा है और हमारी चमड़ी का काला है। हमारी नफरत उनकी जाति, रंग से नहीं बल्कि उनके शोषण से है। उन्होंने हमें गुलाम बनाकर केवल हमारा मनोबल कमजोर नहीं किया है बल्कि हमारी अर्थव्यवस्था को जर्जर बना दिया है। हमारी भाषा और संस्कृति को तबाह कर दिया है। आजादी की लड़ाई इसलिए लड़ रहे हैं कि आज हिन्दुस्तान में किसी भी देशवासी की आंखों में गरीबी और अकाल का आंसू नहीं रहेगा और हम हर प्रकार के शोषण का अंत करेंगे। समता और न्याय के आधार पर नये समाज की रचना करेंगे। संविधान निर्मात्री समिति ने भारतीय संविधान के निर्माण में सभी बातों को ध्यान में भी रखा और स्वतंत्रता, समानता, सह-अस्तित्व, भ्रातृत्व और सामाजिक न्याय को प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य भी माना परन्तु मूलभूत सामाजिक व्यवस्था का बदलाव तदनुरूप न होने से सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति न हो सकी।

किये गये प्रयास

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न क्षेत्रों में समता लाने हेतु सरकारी प्रयासों की संक्षिप्त चर्चा से हम यह देखने की कोशिश करेंगे कि संविधान की मूल मंशा को कार्य रूप में परिणित करने में सरकार कहां तक कामयाब रही है।

यदि सबसे पहले हम राजनीतिक क्षेत्र पर विचार करें तो देखते हैं कि राजनीतिक क्षेत्र में जन-सहभागिता में व्यापक परिवर्तन आया है। 18 वर्ष की वय के बाद सबको चुनाव में खड़े होने और मनोनुकूल अपना प्रतिनिधि चुनने की पूरी छूट है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों की राजनीतिक सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए उनके लिए कुछ सीटें निर्धारित कर दी गयी हैं। इसी प्रकार महिलाओं को भी इस क्षेत्र में लाने का प्रयास किया गया। विभिन्न क्षेत्रों के विशिष्ट लोगों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए उनके मनोनयन की भी व्यवस्था है।

आर्थिक क्षेत्र के सम्बंध में विचार करने पर हम पाते हैं कि गरीबों की दशा सुधारने तथा गरीबों एवं अमीरों के बीच की खाई को पाटने के लिए अनेक प्रयास किये गये। जमींदारी उन्मूलन, भूमि सुधार कार्यक्रम, प्रिविपर्स की समाप्ति तथा बैंकों के राष्ट्रीयकरण आदि कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं। जमींदारी के उन्मूलन और भूमि सुधार कार्यक्रम के द्वारा सरकार और किसानों के बीच लगान वसूलने और भूमि प्रबंध से सम्बंधित बिचौलिए समाप्त हो गये। भूमि सीमा निर्धारण से 7.4 मिलियन एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की गयी जिसे सरकार ने अधिग्रहण करके इसमें से 4.4 मिलियन एकड़ भूमि भूमिहीनों को बांट दी। इसके साथ ही लगानों का नियमन एवं कृषि का पुनर्गठन किया गया। प्रिविपर्स की समाप्ति से राजाओं का विशेषाधिकार एवं विशिष्ट स्तर समाप्त हो गया। बैंकों का राष्ट्रीयकरण होने से बैंकों के धन का उपयोग जन-सामान्य के विकास में लगने लगा। पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा सर्वांगीण विकास का कार्य प्रारम्भ किया गया। कृषि और उद्योग दोनों क्षेत्रों के विकास के साथ-साथ अन्य अनेक क्षेत्रों को (यथा विद्युत, उर्वरक, डीजल, पेट्रोल, कोयला उत्पादन आदि) विकसित करने का प्रयास किया गया। ग्रामीण विकास की अनेक योजनाओं के द्वारा कृषि पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि कर न केवल खाद्य समस्या को हल करने का लक्ष्य रखा गया वरन् गरीब तबके के लोगों को भी उत्तम किस्म के अन्न सुलभ कराने का प्रयास किया गया। ग्रामीण कारीगरों को प्रशिक्षण देने के साथ ही उन्हें औजारों की एक पेटिका भी प्रदान करने का प्रयास किया गया। कमजोर वर्ग के लोगों के लिए कपड़े, आवास की समस्या से निपटने के लिए निर्बल वर्ग आवास योजना एवं इन्दिरा आवास योजना प्रारम्भ की गयी। लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने की योजना के अंतर्गत, शिल्प उद्योग, हस्त करघा, चर्म-उद्योग एवं गांधी आश्रम आदि को विशेष सहायता प्रदान की गयी।

विद्युत उत्पादन में वृद्धि कर विकास की गति में तीव्रता लायी गयी। पशुओं के नस्ल सुधार से दुग्ध उत्पादन में वृद्धि कर डेरी उद्योग को विकसित किया गया। ग्रामीण युवकों को रोजगार प्रदान करने के लिए ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। कृषि क्षेत्र में लगे असंगठित मजदूरों की दशा सुधारने के लिए उनकी न्यूनतम मजदूरी तय की गई। बेरोजगार युवकों को स्वरोजगार स्थापन के लिए कम ब्याज पर ऋण की व्यवस्था की गयी। सामुदायिक विकास योजनाओं के द्वारा गांवों के सर्वांगीण विकास हेतु तकनीकी सहायता सरकार की ओर से उपलब्ध करायी गयी और उन्हें अपना विकास स्वतः करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक योजनाओं के द्वारा गांवों का सर्वांगीण विकास करने का प्रयास किया जाता रहा है।

इसी प्रकार सामाजिक क्षेत्र में किये गये प्रयासों में सबसे महत्वपूर्ण कदम अस्पृश्यता निवारण अधिनियम, 1955 है।

इसके द्वारा अनुसूचित जातियों की सभी परम्परागत निर्योग्यताओं को समाप्त करने तथा उन्हें सामाजिक न्याय दिलाने का प्रयास किया गया। सन् 1976 में पृथक नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम पास करके अस्पृश्यता सम्बंधी अपराध की पुनरावृत्ति रोकने के लिए अधिक कड़े दण्ड की व्यवस्था की गयी तथा अस्पृश्यता निवारण के लिए प्रशासन को और अधिकार प्राप्त हो गया। इसके अतिरिक्त उनकी सामाजिक निर्योग्यताएं दूर करने के लिए अधिनियम के अनुच्छेद 15, धार्मिक सहभाग एवं पूजा पाठ के अधिकार हेतु अनुच्छेद 25, शिक्षण की व्यवस्था हेतु अनुच्छेद 29, सभी प्रकार के शोषण रोकने के लिए अनुच्छेद 46, राज्यों की विधान सभाओं एवं केन्द्रीय लोकसभा में उनके प्रतिनिधित्व निर्धारण के लिए अनुच्छेद 330, 323 एवं 329 का प्रावधान किया। राज्य स्तर पर अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए अलग-अलग बोर्ड का भी गठन किया गया। अनेक एच्छिक संगठन (यथा सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी, भारतीय दलित वर्ग एवं भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम आदि) भी बने जो उनके कल्याण के कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न सेवाओं में उनकी वय एवं उनकी योग्यता की छूट के साथ उनके लिए पूर्व परीक्षा प्रशिक्षण केन्द्रों एवं निर्देशन केन्द्रों की स्थापना की गई। पिछड़े वर्गों के कल्याण हेतु स्थापित बी. पी. मण्डल आयोग (21 मार्च 1979—31 दिसम्बर 1980) ने सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े लोगों को 27 प्रतिशत आरक्षण दिये जाने के साथ ही अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के समान अन्य छूट एवं सुविधाएं भी देने की सिफारिश की।

स्त्रियों, बच्चों, विकलांगों एवं बंधुआ मजदूरों के सम्बंध में भी अनेक अधिनियम, उन्हें सुविधा प्रदान करने के लिए बनाये गये और उनका प्रभाव भी पड़ा। स्त्रियों को सम्पत्ति सम्बंधी अधिकार अधिनियम, 1956 द्वारा पारिवारिक सम्पत्ति में पुत्री, पत्नी तथा माता के रूप में उसे अधिकार प्रदान किए गये। अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बालकों को किसी कारखाने, खान अथवा अन्य जोखिम भरे कार्यों में लगाने का प्रतिषेध किया गया है। बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 द्वारा देश में बंधक श्रमिकों को रखने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। इसी प्रकार कर्मचारियों के भविष्य निधि, बीमा, बोनस, स्वास्थ्य सेवाओं आदि के सम्बंध में अनेक अधिनियम बनाये गये हैं।

वस्तु स्थिति का मूल्यांकन

इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी वर्गों को सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए अनेक संवैधानिक प्रावधान किये गये हैं जिनकी व्यापक चर्चा किया जाना इस लघु निबंध में संभव नहीं है। ऐसे ही देश के सर्वांगीण विकास हेतु अनेक योजनाएं एवं कार्यक्रम चलाये गये और चलाये जा रहे हैं उनके द्वारा विकास भी हुआ, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है। परन्तु इन अनेक सरकारी मूल्यांकनों, निजी एवं संस्थागत सर्वेक्षण प्रतिवेदनों एवं व्यक्तिगत अनुभवों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि सदियों से चले आ रहे सामाजिक विभेद, छूआछूत, कठोर जातीय संस्तरण एवं अंध विश्वासों के चलते अभी समाप्त नहीं हो सके हैं। हां स्थिति में परिवर्तन अवश्य आया है परन्तु अभी बहुत कुछ आना शेष है। आज भी गांवों में अनुसूचित जातियों के प्रति किये जा रहे भेद-भाव एवं अत्याचार के समाचार प्रकाश में आते ही रहते हैं। बंधुआ मजदूरों की प्रताड़ना की घटनाएं और दहेज के लिए की जा रही हत्याएं अधिनियमों का मखौल उड़ाने के लिए काफी हैं। भूमि सुधार कार्यक्रमों के अंतर्गत भूमि सीमा निर्धारण के कार्य राज्यों के मन-माने बनाये गये कानूनों और उनके अनुपालन में ढिलाई के कारण खोखले साबित हुए हैं। भूमि सुधार के संबंध में कुछ राज्यों से ऐसे भी अध्ययन के प्रतिवेदन प्राप्त हुए हैं जिनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि पहले की स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं हो पाया है। बिहार इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इसके कारणों के पीछे विभिन्न क्षेत्रों में मुख्य रूप से उच्च जातियों का वर्चस्व पाया गया है। ऐसे ही विभिन्न विकास योजनाओं के लिए जो धन आवंटित किये जाते रहे हैं उनका बहुत बड़ा हिस्सा बिचौलियों की जेब में चला जाता है। निर्देशित स्थानों पर उनका व्यय बहुत ही कम किया जाता है। इस बात को राजीव गांधी ने भी अपने एक सम्बोधन में स्वीकार किया है—"गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों पर सरकार द्वारा व्यय किये गये 6 रुपये में से मात्र 1 रुपया सम्बन्धित व्यक्ति तक पहुंचता है। शेष राशि उन बिचौलियों द्वारा हथिया ली जाती है जो गरीबों की सहायता के लिए निर्मित आधारभूत ढांचे की व्यवस्था करने का स्वांग रच रहे हैं या उनकी मदद का दम भरते हैं.....सातवीं योजना में निविष्ट 1,80,000 करोड़ रुपये मे मात्र 30,000 करोड़ रुपये ही जनता के वास्तविक लाभ के लिए उपलब्ध हुए हैं।" (पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी का 7 जुलाई, 1988 को कांग्रेस सेवा दल के सदस्यों के सम्बोधन का कुछ अंश)।

वर्तमान स्थिति

आज भारत की विशाल जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग (सम्पूर्ण जनसंख्या का 37.41 प्रतिशत अर्थात् 27 करोड़ 10 लाख) गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहा है। उनके आंसू महंगाई, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिक तनाव और जातीय दंगों से बढ़ते ही जा रहे हैं। इन लोगों का एक बहुत बड़ा भाग

सामाजिक न्याय और हमारी व्यवस्था

बलराज मेहता

प्रस्तुत लेख में आय और पूंजी वितरण की असमानता जिसे लेखक बहुत गंभीर मानता है की विस्तृत चर्चा की गई है। साथ ही गांव में भूमिहीन निर्धन किसान और धनी जमींदार वर्ग के बीच संघर्ष से बिगड़ती स्थिति का भी उल्लेख है। लेखक का मानना है कि 'सामाजिक न्याय' का लक्ष्य तब तक मुख्य राजनीतिक धारा में पर्याप्त महत्व नहीं पायेगा जब तक कामगार संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष नहीं करते। जब तक उन्हें व्यवस्था और सत्ता में भागीदारी नहीं मिलती। ऐसा होने पर ही हम अपनी जनतांत्रिक व्यवस्था में सामाजिक न्याय को पा सकेंगे।

स्वतंत्रता प्राप्त किये हुए हमें 40 वर्ष से अधिक हो चुके हैं लेकिन अभी तक सामाजिक समस्याओं के हल के लिए कोई गंभीर प्रयास नहीं किये गये हैं। समाज के कुछ शक्तिशाली वर्गों की हमेशा से यह कोशिश रही है कि शोषित और उत्पीड़ित वर्ग की स्थिति में कोई बड़ा परिवर्तन न आये। सत्ता में रहे लोगों ने हमारे सामाजिक मुद्दों का उपयोग नारों के रूप में राजनीतिक लाभ उठाने के लिए किया है। उदाहरण के लिए 'सामाजिक विषमता' और 'गरीबी हटाओ' सत्तर के दशक के प्रमुख राजनीतिक नारे रहे हैं। आजकल फिर से सामाजिक न्याय की चर्चा की जा रही है। डा. आम्बेडकर को 'भारत रत्न' से सम्मानित करने के बाद उनके जन्मशताब्दी वर्ष को सामाजिक न्याय वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है लेकिन अब भी इस संदर्भ में ठोस प्रयास करना अपेक्षित है।

हमारे संविधान में निजी सम्पत्ति के अधिकार को जहां मूलभूत अधिकार का दर्जा दिया गया, वहीं सामाजिक न्याय को नीति-निर्देशक सिद्धान्तों की सूची में छोड़ दिया गया। इसके परिणामस्वरूप सम्पत्तिहीन गरीबों से सामाजिक न्याय बहुत दूर रह गया है। संविधान को लागू हुए 40 वर्ष से अधिक समय हो चुका है लेकिन गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले एक बहुत बड़े वर्ग, जो कि अशिक्षित और अधिकारों से अनभिज्ञ है, तक संविधान में निहत नीति-निर्देशों का कोई लाभ नहीं पहुंचाया है। वास्तविकता तो यह है कि किसी भी 'नीति निर्देश' का सही मायनों में अनुपालन नहीं हुआ है।

असंतुलित ग्रामीण अर्थव्यवस्था

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के संदेश में उल्लेखनीय है कि अभी तक भूमि सुधारों को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया है। इससे जहां एक ओर कृषि का व्यावसायिकरण बढ़ा है वहीं दूसरी ओर

निर्धन किसान अपनी भूमि से बेदखल होता गया है। भूमिहीन कृषि मजदूरों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। यह 1961 में 1 करोड़ 31 लाख से बढ़कर अब लगभग 8 करोड़ हो गयी है। गरीब किसान अपनी भूमि का छोटा-सा टुकड़ा खोकर शहरों में पलायन कर गये हैं या फिर कृषि मजदूर बन कर रह गये हैं। हालांकि इनमें से कुछ अब भी अपनी भूमि के मालिकाना अधिकार के लिए प्रयत्नशील हैं लेकिन इनके सामने मुख्य मुद्दा अब अपने नियोक्ता, अमीर किसानों से अपना हक लेना है। इन कृषि मजदूरों के अतिरिक्त दूसरे लाखों ग्रामीण दस्तकार भी आज बढ़ते हुए उद्योगों की प्रतिस्पर्द्धा में कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं, वे दिन प्रतिदिन और निर्धन होते जा रहे हैं।

औचित्यहीन न्यूनतम मजदूरी

सरकार अपनी नीति के अनुरूप अपनी जरूरत से अधिक पैदावार करने वाले किसानों जो कि प्रायः बड़े किसान हैं, को अनाज की बिक्री के लिए लाभकारी मूल्य देती है। इसका उद्देश्य है कि वे किसान अपने खेतों पर काम करने वालों को न्यूनतम मजदूरी दे सकें, लेकिन यह मजदूरी तो प्रायः प्रचलित मजदूरी से भी कम होती है। न्यूनतम मजदूरी कानून के अंतर्गत गठित एक समिति के अनुसार एक कृषि मजदूर की कम-से-कम मजदूरी उसके परिवार (पति, पत्नी और तीन बच्चे) के लिए सस्ते अनाज के दो समय के खाने, साल में दो जोड़ी कपड़े और एक छप्पर की लागत के बराबर होनी चाहिए। लेकिन यह हास्यास्पद है कि सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी इस सुझायी गयी मजदूरी से भी कम है। बड़ा किसान जो सरकार से लाभकारी मूल्य प्राप्त करता है कभी भी अपने लाभ में से कुछ और राशि इन गरीब मजदूरों को देने के लिए तैयार नहीं होगा। न्यूनतम मजदूरी का यह सिद्धान्त उद्योगों में भी अपनाया गया है। ये भूमि के मालिकों और उद्योगपतियों को और धनी बनने में मदद देता है जबकि दूसरी ओर निर्धन मजदूर इस मजदूरी में अपना गुजारा भी नहीं कर पाता है। न्यूनतम मजदूरी का सिद्धान्त तो तब ही उपयोगी हो सकता है जबकि मजदूरी की दरें प्रायः प्रचलित दरों से अधिक पर निर्धारित की जायें और उसका सख्ती से अनुपालन हो।

शहरी क्षेत्रों में कामगारों की स्थिति भी कोई अच्छी नहीं है। उद्योगों में काम कर रहे मजदूरों को अब भी बहुत कम मजदूरी दी जाती है। इसका उद्योग लाभ या उत्पादन स्तर से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। बड़े और छोटे दोनों उद्योगों के मालिक पर्याप्त क्षमता होते हुए भी उचित मजदूरी देने से कतराते हैं। संगठित क्षेत्रों में तो केवल 10 प्रतिशत ही कामगार हैं। शेष कामगार असंगठित क्षेत्रों में हैं। इनमें से भी अधिकतर गैर पंजीकृत श्रमिक हैं। अतः नौकरी की सुरक्षा, चिकित्सा और आवासी सुविधा की तो बात दूर रही उन्हें गुजारे लायक मजदूरी भी नहीं मिल पाती है। उन्हें निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से भी कम पर काम करना पड़ता है।

वर्ग संघर्ष

आय और पूंजी की इस बड़ी असमानता को दूर करने की अपेक्षा आम आदमी अपनी राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था तो करता है, लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से अब तक सामाजिक और आर्थिक ढांचे परिवर्तन के लिए विशेष प्रयास नहीं किये गये। हमारी राजसत्ता मूलभूत परिवर्तन लाने में जहां सक्षम रही है वहीं उसमें इच्छा शक्ति की कमी भी देखी गयी है। हालांकि गांवों में जनतंत्र, पंचायती राज, सत्ता का विकेन्द्रीकरण आदि आदेशों की प्रायः चर्चा की जाती है लेकिन अशिक्षा को जड़ से जनतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी जैसे सामाजिक बदलाव के काम जिन्हें अभी तक पूरे हो जाना चाहिए था अधूरे हैं। विकास और आयोजना जैसी महत्वपूर्ण प्रक्रिया में भी आज राजनीति आ गयी है। प्रशासनिक ढांचे का केन्द्रीकरण और अवांछनीय तत्वों का व्यवस्था पर नियंत्रण बढ़ा है।

हाल ही के कुछ वर्षों में आदिवासियों, भूमिहीन निर्धन किसानों, असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के संघर्ष में तेजी आयी है। इसने उग्रवाद का रूप धारण कर लिया है। इसे नक्सलपंथी आतंक कह कर इस पर चिन्ता व्यक्त की जा रही है। इस सबके पीछे गरीब कृषि मजदूर और अमीर किसानों तथा शोषित और शोषकों के हितों के बीच बढ़ता हुआ टकराव है। गरीब किसान वर्ग ने हमेशा ही जमींदारों का विरोध किया है। इस विरोध ने ही अब आज के सामाजिक-आर्थिक ढांचे में एक उग्र रूप ले लिया है और नक्सलपंथी आतंक बन गया है। मुट्ठी भर अमीर किसानों द्वारा भूमिहीन किसानों का निर्मम शोषण और वर्तमान सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का लाभ उन तक नहीं पहुंचाना ही इस हिंसक आन्दोलन का कारण है। सरकारी तंत्र ने भी अमीर किसानों से मिलीभगत होने के कारण कृषि मजदूरों पर होने वाले अत्याचारों का विरोध नहीं किया है। समाज में इन सब विषमताओं के होते 'सामाजिक न्याय वर्ष' मनाना एक उपहास ही लगता है।

शासन की विश्वसनीयता

बड़े स्तर पर औद्योगीकरण की शुरुआत और दूसरी ओर भूमि सुधारों की उपेक्षा शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के कामगारों की स्थिति दयनीय बनाये रखने में मदद करती रही

है। कृषि के प्राथमिक क्षेत्र से हमारी राष्ट्रीय आय का केवल 35 प्रतिशत ही मिलता है जबकि अब भी 70 प्रतिशत से अधिक आबादी इस क्षेत्र पर निर्भर है। परिणाम इस क्षेत्र में श्रम की अतिरिक्त उपलब्धता है। यही कारण है कि इस क्षेत्र में मजदूरों का निर्मम शोषण होता रहा है। दूसरे क्षेत्र में भी उच्च वर्ग की आवश्यकताएं पूरी करने के बाद मजदूर वर्ग के लिए शेष कुछ नहीं बचता है। बेरोजगारों की संख्या बढ़ती जा रही है। समुचित हिस्सा न मिल पाने और श्रम के शोषण से सामाजिक अशांति एवं वर्ग संघर्ष बढ़ रहा है। यह अब हिंसक प्रवृत्तियां भी दिखाने लगा है। इन सबके लिए बहुत हद तक शासन भी जिम्मेवार है। कई मामलों में शासन का गैर जिम्मेवारी पूर्ण व्यवहार खुलकर सामने आया है। गुजरात में 1987 में भयंकर सूखे के दौरान वहां के शासन द्वारा जमीन की बिक्री और खरीद की खुली छूट देने से वहां गरीब किसान अपने छोटे-से भूमि के टुकड़े को भी नहीं बचा पाया। इसी तरह वामपंथी उग्रवादियों को खत्म करने के लिए सरकार द्वारा राज्यों में बड़ी संख्या में सैनिक बल भेजना, लेकिन बिहार तथा दूसरी जगहों पर जमींदारों द्वारा गठित आतंकवादी दलों को खुले आम घूमने की छूट देना सरकार की विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न लगाता है। शासन में वास्तविकता को समझाने और सामाजिक उत्तरदायित्व की कमी से सामाजिक समस्याएं और बढ़ी हैं।

राजनीतिक बदलाव और सामाजिक न्याय का लक्ष्य

अब राजनीतिक वातावरण में बदलाव आया है। लम्बे समय तक एक दलीय प्रभुत्व के बाद शासन मिली-जुली सरकार के पास है। यह हमारे राजनीतिक सामाजिक परिवर्तनों का एक अंग है। इस व्यवस्था में व्यक्तित्व और गुटों का टकराव कम होना चाहिए और नीतिगत मामलों को प्रमुखता मिलनी चाहिए। इसमें व्यवस्था की पारदर्शिता भी बढ़ेगी। इसका महत्व सामाजिक-आर्थिक मामलों में अधिक महसूस किया जाएगा। हालांकि कुछ लोग इस नई राजनीतिक व्यवस्था में अस्थिरता अधिक देखेंगे लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में अवांछनीय तत्वों की स्थिति उसी प्रकार बनी रहने दी जाये।

आज राजनीति में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए व्यापारिक घरानों जो मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों का सहारा लेते हैं और अमीर किसानों के वर्ग के बीच प्रतिस्पर्द्धा जारी है। हालांकि इन्हें ऐसा करने में नये सामाजिक बलों से चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। इसके साथ ही किसी एक दल के एकाधिकार समाप्त होने से राजनीतिक प्रक्रिया में अमीर किसानों के लिए भागीदारी के अवसर बढ़े हैं। उनकी भागीदारी अब पहले के 10 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 25 प्रतिशत हो गयी है। लेकिन सामाजिक न्याय अब भी मुख्य राजनीतिक धारा से अछूता है। हमारी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग जो लगभग 75 प्रतिशत है, उनकी अब भी विकास व्यवस्था और राजनीतिक प्रक्रिया में कोई भागीदारी नहीं है। इन सब विषमताओं के होते हुए सामाजिक न्याय का लक्ष्य प्राप्त करना एक बहुत बड़ा सपना लगता है।

अनुवादक : पी. सी. जोशी
सहायक सूचना अधिकारी
पत्र सूचना कार्यालय, शास्त्री भवन

सामाजिक न्याय : सच्चाई क्या है?

स्वामी अग्निवेश

स्वामी अग्निवेश का मानना है कि अन्याय और असमानता पर आधारित व्यवस्था के कारण भारतीय समाज पतन की दिशा में अग्रसर हुआ है। उनका विचार है कि पिछले चार दशकों में सामाजिक न्याय पर आधारित विकास के नाम पर शहरी औद्योगिक शक्तियों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था का उसी तरह शोषण किया है जैसा कि इससे पहले साम्राज्यवादी ताकतें करती रहीं। लेखक का विचार है कि कुछ लोगों का स्वार्थ इसी में निहित है कि लोग, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, पिछड़े और अपने अधिकारों से अनभिज्ञ रहें। रेडियो और दूरदर्शन जैसे सरकारी माध्यम भी लोगों में व्याप्त अज्ञानता के इस कोहरे को नष्ट करने में असफल रहे हैं। लेखक का विचार है कि वास्तव में ये माध्यम शहरी कुलीन वर्ग की जरूरतों को पूरा करने में लगे हैं। लेखक को आशा है कि वर्तमान सरकार द्वारा उठाए गए विभिन्न कदमों से दलितों के उत्थान में मदद मिलेगी और चिर-प्रतिक्षित लक्ष्यों की प्राप्ति संभव हो सकेगी।

1976 में इमरजेंसी के दौरान मैं पूरा एक साल अंबाला सेन्ट्रल जेल में मीसा बंदी था। उसी बैरक में स्वर्गीय रामानन्द तिवारीजी भी थे। तिवारीजी अंग्रेजी हुकूमत में एक साधारण सिपाही थे। गांधीजी की प्रेरणा पर बगावत करके जेल में रहे। बाद में वे बिहार के गृहमंत्री भी बने। उनके पास जेल में गांधीजी पर बहुत साहित्य था। पहली बार मुझे गांधी साहित्य के अनुशीलन का मौका मिला। मेरे मन पर गांधीवाद या गांधी दर्शन की जो सबसे गहरी छाप पड़ी वह थी—अंतिम व्यक्ति का पैमाना। कहते हैं कि मुल्क के पहले प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू को अपनी वसीयत के रूप में गांधीजी ने यह सीख दी थी कि इतने बड़े पद पर बैठकर जब कभी प्रधानमंत्री को किसी गंभीर निर्णय में उलझन महसूस हो तो उन्हें चाहिए कि आंखें बंद करके इस मुल्क के सबसे ज्यादा गरीब, शोषित, बेबस और बेकस इन्सान का चेहरा याद करें और अपने आप से यह सवाल पूछें कि राष्ट्रीय नीति के किसी खास फैसले से उस गरीब-से-गरीब इन्सान की जिन्दगी में खुशहाली की किरण सबसे पहले जगमगायेगी या नहीं? यदि अन्दर से आवाज आती है कि सरकार की नीतियों से रोशनी सबसे पहले किसी गरीब की झोपड़ी में नहीं अपितु किसी धनवान की तिजोरी में होगी और वहां से छन-छन कर ही वह दो-चार-दस साल बाद गरीब की झोपड़ी तक पहुंचेगी। गांधीजी का कहना था कि ऐसी नीति को लागू नहीं करना चाहिए। विकास एवं सामाजिक न्याय की शुरुआत गरीब के आंगन से चले और ऊपर उठे। दलित, शोषित, उत्पीड़ित को सकून का अहसास पहले हो बाद में किसी और को! गांधीजी को इस 'अंतिम व्यक्ति को' विकास का मापदंड बनाने की प्रेरणा यूरोप के प्रसिद्ध दार्शनिक जॉन रस्किन से मिली थी।

देश का दुर्भाग्य था कि आजादी के बाद विकास का रास्ता सामाजिक न्याय की इस कसौटी पर आधारित न होकर ठीक उल्टा रहा। इस दूसरे रास्ते का नाम है—'परकोलेशन' या 'ट्रिकल डाउन' थ्योरी। चन्द अमीरों की तिजोरियां इतनी भरो, इतनी भरो कि कभी न कभी वहां से छिटक कर रुपया नीचे गिरेगा और तब नीचे वाले जब अमीर हो जायेंगे तो उसी तरह फिर नीचे और फिर नीचे। इस तरह गरीब-से-गरीब के पास विकास की, न्याय की रोशनी दस, बीस, पचास साल में, कभी

तो पहुंचेगी ही पहुंचेगी। लगभग चालीस साल तक देश में श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रतिपादित यह 'ट्रिकल डाउन' सिद्धांत, उनके बाद श्रीमती इंदिरा गांधी के हाथों तथा उनके बाद श्री राजीव गांधी के हाथों लागू होता रहा। 'सामाजिक न्याय पर आधारित विकास' के मुखौटे में शहरी औद्योगिक शक्तियों द्वारा ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्था का दोहन औपनिवेशिक शोषण के सिद्धांतों पर होता रहा। कच्चा माल उसके उत्पादन लागत से भी कम में खरीदो। श्रम की कीमत केवल इतनी दो कि श्रमिक जिन्दा रहे और मरने से पहले अपने जैसे दो चार श्रमिक पैदा करके सस्ते श्रम की मंडी को बरकरार कर चला जाये। दूसरी तरफ मशीनीकरण के सहयोग से पूंजी तथा प्रबन्ध कौशल का इतना दाम लगाया जाये कि मुनाफाखोरों के ठाठ हों। इस पूरी प्रक्रिया में उद्योगपति मालामाल होता है, बिचौलिये भी खुश रहते हैं पर वास्तविक उत्पादक किसान-मजदूर की कमर टूट जाती है। लेकिन यदि मुखौटा 'सामाजिक न्याय' का है तो कुछ-न-कुछ तो नाटक होना ही चाहिए। कुछ कानून बनने चाहिये, उसको लागू करने के नाम पर सरकारी अमला बढ़ते जाना चाहिए, वह लागू नहीं हो पाया इसकी जांच के लिए एक और विभाग खुलना चाहिये। और इस तरह गरीब के दिल में बीच-बीच में यह अहसास और उम्मीद बनाये रखी जानी चाहिये कि आखिर कहीं तो, कुछ तो हो रहा है। यदि न्याय पूरा नहीं मिल रहा है तो इसके लिये सबसे ज्यादा दोषी गरीब स्वयं है। विकास का लाभ उठाने के बदले वह जनसंख्या बढ़ा-बढ़ा कर सारे विकास को चौपट कर रहा है।

1990 के भारत में आज कम-से-कम पचास लाख बन्धुआ गुलाम मजदूर हैं। लगभग साढ़े पांच करोड़ ऐसे बाल मजदूर हैं जिनसे उनका बचपन छीन लिया गया है और जो मजदूरी करने के लिए मजबूर हैं। शिक्षा के नाम पर लगभग छियालिस करोड़ लोग अंगूठा छाप, निरक्षर हैं। दुनिया भर में अंधे पैदा होने वाले बच्चों की कुल संख्या का एक तिहाई अकेले भारत में हैं, कुल टी. बी. मरीजों का एक चौथाई और कुल कोढ़ियों का पांचवां हिस्सा भारत में है।

इस सब बीमारी, जहालत और मौत के बीच अट्टहास करते विलासिता के चन्द टापू हैं। भारतीय समाज कदम-कदम पर विषमताओं से ग्रस्त है। कहीं घोर आर्थिक विषमता है तो कहीं सामाजिक विषमता है तो कहीं दोनों साथ-साथ हैं।

चिलचिलाती धूप में दिन भर में कड़ी मेहनत की न्यूनतम मजदूरी दस रुपये है, मालिक के कुत्ते के नाश्ते का गोश्त पन्द्रह रुपये का है और स्वयं मालिक की रात किसी पांच सितारे होटल के एक कमरे का ढाई हजार रुपये किराया देकर बीतती है। जो बच्चे सुबह उठकर मां के साथ खेतों में घास काटने जाते हैं उनकी बात छोड़िये। गरीब बच्चे जो स्कूल जाते भी हैं तो बस्ते के साथ बैठने के लिए बोरी भी साथ ले जाते हैं, एक कमरे के स्कूल में एक अध्यापक द्वारा पांच-पांच कक्षायें लगाई जाती हैं और ऐसे अध्यापक महोदय हफ्ते में पांच दिन छुट्टी पर रहते हैं। दूसरी ओर देहरादून का दून स्कूल है और जहां एक छोटे बच्चे का एक महीने का खर्च दो हजार रुपये से ज्यादा है। जहां पढ़ाई के साथ-साथ घुड़सवारी, स्वीमिंग पूल में तैराकी और टेनिस के खेल की ट्रेनिंग दी जाती है। पूरे देश में व्याप्त दोहरी शिक्षा प्रणाली समता एवं सामाजिक न्याय के नारों का खोखलापन उजागर कर देते हैं।

भारत का संविधान प्रखर सामाजिक न्याय की दुहाई देने वाला प्रचण्ड दस्तावेज है। उसकी प्रस्तावना (प्रिएम्बल) ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय एवं समता की दुहाई देता-देता भारत को एक समाजवादी गणतंत्र के रूप में घोषित करता है। पर समाजवाद तो दूर रहा इस विशाल तंत्र में गण के लिए कोई स्थान नहीं है। सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि देश के संविधान और देश में बने विधान की जानकारी भी गण को नहीं है। देश में सरकारी कन्ट्रोल में चलने वाला रेडियो और दूरदर्शन न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 और इसके अन्तर्गत समय-समय निर्धारित की जानी वाली मजदूरी की दरों की तथा उन्हें प्राप्त करने के संवैधानिक तरीकों की कोई जानकारी नहीं देता। इसी तरह बाल श्रमिक कानून, 1986 या फिर बंधुआ मजदूर मुक्ति अधिनियम, 1976 या प्रवासी मजदूर अधिनियम, 1979 की धाराओं को न जाने क्यों गरीब जनता तक पहुंचाने से कतराता रहता है। भूमि सुधार कानूनों तथा छुआछूत मिटाने संबंधी कानून क्यों नहीं लागू हो रहे इस पर कभी कोई बहस इलेक्ट्रानिक मास मीडिया पर कभी सुनाई नहीं पड़ती। न्यूजीलैंड में खेले जा रहे क्रिकेट टेस्ट मैच से लेकर विंबल्डन लान टेनिस मैचों का सीधा (जीवित) प्रसारण करना इनके लिये आसान है, खेत मजदूर को उसकी न्यूनतम मजदूरी का हक या फिर महिला मजदूर को मर्द के बराबर वेतन का हक बताना कहीं ज्यादा मुश्किल है—शायद असंभव है। हम बंधुआ मुक्ति मोर्चा की ओर से हर साल गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर सूचना प्रसारण मंत्री को प्रदर्शन के साथ ज्ञापन देते हैं और गणतंत्र पर सवाल उठाते हैं—"तंत्र तो है पर क्या गण के लिये है?" सरकारें बदल जाती हैं पर हमारे इस साधारण से सवाल का जवाब हमें नहीं मिल पा रहा। क्या स्वायत्तता की दुहाई देकर पारित प्रसार भारती, प्रधानमंत्री की प्रचार भारती बनकर नहीं रह जायेगी वरन् संविधान में घोषित समता एवं

सामाजिक न्याय के लिए आवश्यक संघर्ष की संवाहक बनेगी?

राष्ट्रीय मोर्चा की नई सरकार ने इन आठ-नौ महीनों में सामाजिक न्याय को समाज में प्रतिष्ठित कर दिया है ऐसी बात नहीं पर उस दिशा में इन्होंने जो ठोस कदम उठाये हैं वे निश्चित सराहनीय हैं। इन सबके गर्भ में वह ऊर्जा छिपी है जो दबाये नहीं दबेगी और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष का तुमुल नाद सड़कों पर निनान्दित होकर रहेगा।

भूमि सुधारों को संविधान की नौवीं सूची में डालकर, किसानों को ऋण मुक्त तथा कृषि को उद्योग का दर्जा देकर, काम के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाकर, श्रमिक को प्रबन्ध में भागीदारी दिलाकर, महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग गठित कर तथा पंचायत से लेकर जिला परिषद तक के चुनावों में महिलाओं के लिए तीस प्रतिशत स्थानों का आरक्षण कर, अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग को संवैधानिक दर्जा देकर तथा सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए मंडल कमीशन लागू कर इस नई सरकार ने बाबा साहेब भीमराव आम्बेडकर के जन्मशताब्दी वर्ष को वास्तविक अर्थों में सामाजिक न्याय वर्ष सिद्ध करने की दिशा में सक्रियता दिखाई है।

यही वे लोग हैं जिन्होंने पांच हजार साल पहले एक गुरु द्वारा एकलव्य जैसे शिष्य का अंगूठा गुरु दक्षिणा में कटवा लिया था क्योंकि एकलव्य जन्मना राजपुत्र न होकर अछूत पुत्र था।

इन्हीं ताकतों ने हजारों साल से वैदिक वर्ण व्यवस्था का रूप कर्मणा से बदल कर जन्मना कर दिया है और समाज की उत्तम से उत्तम-सेवा के काम को, मेहनत और मशक्कत के काम को नीच जाति का दर्जा देकर अपने लिये ऊंची जाति और ऊंचे (तथाकथित बौद्धिक) काम आरक्षित कर लिये हैं। यास्काचार्य ने जिस वर्णाश्रम शब्द के वर्ण की व्याख्या वृणोते-चुनना के अर्थ में किया था उसे बाद के पाखंडी लोगों ने जन्मना बना दिया ताकि अयोग्य होकर भी 'पालागी पंडित जी' कहलवाया जा सके और बिना विशेष मेहनत के, पीढ़ी दर पीढ़ी 'सीधा' मिलता रहे, हलवा माण्डा चलता रहे। इस जाति व्यवस्था ने मुट्ठी भर ऊंची जाति में जन्म लेने मात्र से ऊंचा बन जाने वालों को अपार सामाजिक सत्ता एवं सम्मान दे दिया और बाकी के उत्पादक, आवश्यक श्रम करने वालों को पददलित बनाकर छोड़ दिया।

भारत का संविधान इस जन्मगत जाति व्यवस्था से उत्पन्न विषमताओं को समाप्त करने की दिशा में कुछ महत्वपूर्ण फैसले लेता है। इसके अनुसार जो अनुसूचित जाति के लोग हैं उनको 15%, जनजाति को 7½% आरक्षण की व्यवस्था है—कुल 22½% आरक्षण की व्यवस्था न केवल सरकारी नौकरियों, विद्यालयों में प्रवेश आदि पर है बल्कि विधानसभा, लोकसभा आदि की सीटों पर भी हैं। परन्तु सदियों का शोषण इन शोषित जातियों को इतना निर्बल, बेजुबान बनाए हुए है कि अभी तक सरकारी नौकरियों में ये 22½% से केवल 8% आरक्षण ही ले पाये हैं।

यही वजह है कि 52% की जनसंख्या वाले पिछड़ों को प्रथम श्रेणी की प्रशासनिक सेवाओं में केवल 4.65% स्थान ही मिले हैं। बाकी स्थान दूसरे लोगों के पास हैं। इस घोर असंतुलन को मिटाने के लिए ही सरकार ने पिछड़ी जातियों को 27% आरक्षण (केवल सरकारी सेवाओं में और वह भी केवल केन्द्रीय सरकार की सेवाओं में) लागू करने की बात कही है।

स्वामी विवेकानन्द ने सामाजिक न्याय के युग की भविष्यवाणी की थी और कहा था मछुआरे और मल्लाह उठेंगे, लकड़हारे और लोहार जागेंगे। वक्त आ चुका है—भगवान बुद्ध, गुरुनानक, संत कबीर, स्वामी दयानंद, नारायण गुरु, बसवप्पा, ज्योतिबा फुले और पेरियार की संतानो आओ! आगे बढ़ो क्रांतिकारी भीम का 'सामाजिक न्याय वर्ष' तुम्हारा आह्वान कर रहा है:

एक तन पर सोने के तार खिंचे
एक तन पर सूत का तार नहीं
ये न्याय हमें स्वीकार नहीं।

पूरे एकड़ में बनी हवेली
रहने वाले दो प्राणी
दस हाथ का घर, दस रहते हैं
सो सकते पैर पसार नहीं
ये न्याय हमें स्वीकार नहीं।

हल की सूरत देखी नहीं
हकदार हजारों बीघे का
हल के संग हस्ती मिटा रहा
एक बीघे का हकदार नहीं
यह न्याय हमें स्वीकार नहीं।

सदियों से अवरुद्ध रास्तों को संविधान के प्रकाश में अब जनता की ताकत से वर्तमान सरकार ने खोल दिया है। अब इन रास्तों पर चलकर, दौड़कर, देश के दलित, किसान, मजदूर, महिलायें और नौजवान उस दरवाजे पर दस्तक दे रहे हैं जिसके अन्दर उनकी अपनी पैदा की हुई दौलत कैद है। □

डा. आम्बेडकर अपनी प्रथम पत्नी के साथ

डा. आम्बेडकर अपने जन्म दिवस के अवसर पर (1950)

सामाजिक न्याय-कल्पना या यथार्थ

देवेन्द्र उपाध्याय

भारतीय विधान में हर नागरिक को देश की उन्नति में बराबर का हिस्सेदार माना गया है। इस बुनियादी विचारणीय प्रश्न को अमल में लाने के लिए सरकार से अधिक दायित्व जनता के ऊपर आता है। इसलिये यदि जनता स्वयं जागरुक हो और किसी राजनैतिक लालसा में न फंसे तो कोई कारण नहीं कि इसका लाभ जन-जन तक न पहुंचे। विद्वान लेखक देवेन्द्र उपाध्याय जी ने जो विचार इस लेख में व्यक्त किये हैं वे विधान में अंकित स्वप्न को यथार्थ रूप में देखने की आकांक्षा है। यह जरूरी है कि जनता पूर्ण रूप से जागरुक होकर विधान की मौलिक भावना का साकार करने की सहायता में संलग्न हो। सरकार तो पहले ही सामाजिक न्याय देने के लिए वचनबद्ध है।

भारतीय संविधान में समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना हेतु आदर्श ढांचे की संकल्पना है। इस संकल्पना को साकार करने के लिए उसमें बहुआयामी कार्य-योजना का संकल्प भी है। इस संकल्प में परम्परागत व्यवस्था में अन्तर्निहित अन्याय को मिटाने के साथ-साथ आधुनिक अर्थव्यवस्था का निर्माण न्याय और समानता की चेतना के अनुरूप करने का उद्देश्य है।

सभी नागरिकों के लिए संविधान में शिक्षा और रोजगार के अवसरों में समानता के प्रावधानों का विशेष महत्व है। इसके आधार पर हर नागरिक को अपनी क्षमता और योग्यता के अनुरूप नयी व्यवस्था में बिना किसी भेदभाव के उपयुक्त स्थान प्राप्त करने का अवसर सुनिश्चित होना चाहिए, लेकिन समाज के कमजोर वर्गों को सच्चे अर्थों में न्याय नहीं मिल सका।

अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त की 28वीं रिपोर्ट में यह भावना व्यक्त की गयी है। उसमें यह भी कहा गया है कि—"जब हम अपनी अर्थव्यवस्था के परम्परागत क्षेत्र को देखते हैं तो उसमें भूमि सुधार का निर्णायक सवाल ऐसा लगता है अब केन्द्रीय नहीं रह गया है। अनगिनत खेतिहर मजदूरों के लिए 'जमीन जोतने वाले की' सिद्धांत का अनुपालन एक मोहक सपना मात्र है। विडम्बना तो यह है कि जमीन को जैसे-तैसे जोतते रहने के उनके अधिकार के लिए भी कोई प्रभावी संरक्षण नहीं है।

आदिवासी क्षेत्रों में स्थिति विशेष रूप से चिंताजनक है। सभी ओर आदिवासी लोग तरह-तरह से स्थानिक संसाधनों पर अपने अधिकार खोते जा रहे हैं—कहीं अधिक प्रगत वर्गों का दबाव है, कहीं राज्य स्वयं ही उनके परम्परागत अधिकारों की निरंतर अवहेलना कर रहा है और कहीं छोटी-बड़ी भांति-भांति की विकास परियोजनाओं के लिए एक तरह से जबर्दस्ती विस्थापन का सिलसिला चालू है।

जब हम राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के आधुनिक क्षेत्र को न्याय और समानता के संदर्भ में देखते हैं तो वहां भी किसी सुखद स्थिति का अहसास नहीं होता है। इस व्यवस्था के नये अवसर अधिकतर उन्हीं लोगों को मिले हैं जो शुरुआत की असमान स्थिति और बाद में नयी व्यवस्था में कमजोर वर्गों के प्रति अंतर्निहित अन्यायी व्यवस्था का लाभ उठाकर आगे पहुंचने में सफल हुए हैं।

स्वतंत्रता के 43 वर्ष बाद भी हम पाते हैं कि गरीबी की रेखा के नीचे रहने वालों के जीवन में उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ। जबकि दूसरी ओर नव धनाढ्यों का एक नया वर्ग विभिन्न क्षेत्रों में पैदा हो गया, जिसने शोषण और अन्याय के नये-नये तरीकों का उपयोग करना शुरू कर दिया। बंधुआ मजदूरी की व्यवस्था भी स्वतंत्रता के बाद चलती रही। मनुष्यों के साथ पशुओं से भी बदतर व्यवहार, जुल्म आज भी समाचारपत्रों में पढ़ते हैं। हरिजनों के साथ अमानुषिक बर्ताव होता है। क्या यही

सामाजिक न्याय की परिकल्पना हमारे संविधान निर्माताओं ने की थी?

जब हम गांवों की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि आज भी वहां की स्थिति दयनीय है। विकास का सही लाभ गांवों तक नहीं पहुंच पाया है। विकास की गति के साथ वे आगे नहीं बढ़ पाये। स्थिति यह हो गई कि गांवों में रोजगार के साधन सुलभ नहीं होने के कारण गांवों से पलायन बढ़ता ही गया। महानगरों में अन्यायी व्यवस्था में वे ग्रामीण अपनी पहचान खोते चले गये। जिन लोगों का उत्पादन पर कोई अधिकार नहीं, उन्हें अपने श्रम का ठीक से मूल्य भी नहीं मिलता। जब सदियों से इस देश की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में सबसे निचले स्तर पर रहने वालों को सामाजिक न्याय से वंचित रहना पड़ा, तब ऐसे में ऐसी व्यवस्था के खिलाफ क्षोभ होना स्वाभाविक ही है। नक्सलवाद भी इसी व्यवस्था के कारण उभरा और शोषित-पीड़ित जनों की भावनाओं के साथ स्वयं को जोड़ने तथा प्रतिकार करने के कारण हिंसक घटनाएं भी हुईं, आज भी कुछ राज्यों में हो रही हैं। नक्सलवाद ने वहीं अधिक जोर पकड़ा है जहां सामाजिक-आर्थिक उत्पीड़न अधिक हुआ है। और जहां सदियों से आदिवासी किसी-न-किसी रूप में अधिकारों से वंचित रहे हैं।

जब हम सामाजिक न्याय की बात करते हैं तो पाते हैं कि अस्पृश्यता (छूआछूत की भावना) संविधान के अनुच्छेद-17 के अंतर्गत समाप्त करने तथा किसी भी रूप में इसका व्यवहार निषिद्ध करने के बावजूद यह प्रथा किसी भी रूप में खत्म नहीं हुई है। अनुसूचित जाति के किसी युवक/युवती से किसी सवर्ण का विवाह आज भी मान्य नहीं है। ऐसे विवाहों को प्रोत्साहन देने की बात कही अवश्य जाती है, लेकिन आज भी हम ऐसी घटनाएं पढ़ते हैं, जिनसे रौंगटे खड़े हो जाते हैं। क्या यही सामाजिक न्याय है? क्या सरकारी स्तर पर अंतर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन देने के लिए एक हजार रुपये, दो हजार रुपये या पांच हजार रुपये का पुरस्कार बहुत बड़ा प्रोत्साहन है? जबकि उस समाज या जाति के लोगों के खिलाफ दंडात्मक कदम उठाये जाने चाहिए जो अंतर्जातीय विवाह करने वालों को किसी भी तरह प्रताड़ित करते हैं।

गृह मंत्रालय ने 1974 से अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के विरुद्ध अपराध के आंकड़े एकत्र करने का कार्य शुरू किया। हम पाते हैं कि यह अपराध मूलतः तीन कारणों से होते हैं—

1. अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के भूमिहीनों को सरकारी जमीन आबंटित करने के फालतू जमीन के वितरण से संबंधित अनिर्णीत विवादों के कारण। क्योंकि उन भूमिहीनों को कब्जा देने के लिए कोई सुरक्षात्मक कदम नहीं उठाये जाते। और तब उस गांव के प्रभावशाली लोग उन्हें बेदखल करने के लिए उन पर तरह-तरह के अत्याचार करते हैं।
2. राज्य सरकारें न्यूनतम मजदूरी कानून तो बनाती हैं, लेकिन उनका सही ढंग से कार्यान्वयन नहीं होता। निर्धारित मजदूरी का भुगतान न होने या कम भुगतान होने पर विरोध करने वालों को बड़े भू-स्वामियों के अत्याचारों का शिकार होना पड़ता है।
3. जब अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों में संविधान में प्रदत्त अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के बारे में चेतना पैदा होती है तो प्रभावशाली वर्ग उस चेतना को समूल नष्ट करने के लिए तरह-तरह के दमनात्मक तरीके अपनाता है।

इन सब कारणों से जहां अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़े वर्ग के लोग अत्याचार के शिकार होते हैं वहां उन्हें किसी तरह से भी सामाजिक न्याय नहीं मिल पाता। वर्ष 1981 से 1986 की अवधि में अनुसूचित जातियां एवं जनजातियों पर अत्याचार के 3826 अभ्यावेदन अनुसूचित जाति तथा जनजातियों के कार्यालय में प्राप्त हुए। इसमें हत्या के 216, गंभीर चोट के 95, बलात्कार के 79, आगजनी के 20 तथा अन्य अपराध 3416 थे। लेकिन अनेक अपराध केवल स्थानीय होकर रह जाते हैं, वे ऐसे ही दब जाते हैं।

वर्ष 1981 से 1986 के बीच अनुसूचित जातियों के विरुद्ध 91097 मामले तथा जनजातियों के विरुद्ध 23958 मामले भारतीय दंड संहिता के अधीन दर्ज किये गये।

आंकड़ों से पता चलता है कि सीमांत जोतों में अनुसूचित जातियों का भाग 13.8 प्रतिशत और बड़े आकार की जोतों में 4.4 प्रतिशत था। देश में जब ग्रामीण आबादी में अनुसूचित जातियों का अनुपात 17.34 प्रतिशत था तो तब जोतों की कुल संख्या में उनका प्रतिशत 11.3 था। जब उनका अनुपात 9.5 प्रतिशत था तो तब जोतों में उनका भाग 7.7 प्रतिशत था।

हम देखते हैं कि विकास की गति के साथ-साथ शोषण की प्रक्रियाएं भी और तेज हुई हैं। भूमि पर असमान स्वामित्व भूमि सुधार कानून के बावजूद बना हुआ है। संवैधानिक संरक्षण भी कारगर ढंग से अगर मिल जाता तो सामाजिक अन्याय की घटनाएं काफी हद तक रुक सकतीं। लेकिन हमारे यहां हुआ यह है कि स्वतंत्रता के बाद नये अवसर उनको मिलते रहे हैं जो स्वयं आगे बढ़ कर दूसरों को दबा कर लाभ हासिल कर पाये।

अनुसूचित जनजातियों को सदियों से उन स्थानिक संसाधनों पर परंपरागत अधिकार प्राप्त थे, लेकिन वे भी छिनते चले जा रहे हैं। अब वे असंगठित क्षेत्र में मजदूरी करने के लिए विवश हो रहे हैं। अनेक क्षेत्रों में वहां के मूल आदिवासी (जनजातियां) अपने सदियों पुराने गांवों और जमीन से बेदखल होकर बाहर से आकर काबिज भू-स्वामियों के बंधुआ मजदूर बन गये हैं। इसे सामाजिक न्याय तो नहीं कहा जा सकता है। संपूर्ण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लोगों को सामाजिक न्याय के सकारात्मक विभेद का लाभ नाममात्र को ही मिल पाया है, लेकिन वह भी सिर्फ सार्वजनिक क्षेत्र के अवसरों तक ही सीमित रह गया है।

संविधान के निर्माता डा. भीमराव आम्बेडकर के जन्मशती वर्ष को 'सामाजिक न्याय वर्ष' के रूप में मनाया जा रहा है, लेकिन हमें यह भी देखना होगा कि क्या सामाजिक न्याय वर्ष मना लेने मात्र से ही हमारे कर्तव्य की इतिश्री हो जायेगी।

डा. आम्बेडकर ने दलितों के उत्थान के लिए जो कुछ किया, वह सदियों से शोषित-पीड़ित दलितों के लिए एक नये युग का सूत्रपात था। लेकिन स्वतंत्रता के बाद अनेक संवैधानिक संरक्षण दिये जाने के बावजूद सामाजिक-न्याय की जो कल्पना संविधान निर्माताओं ने की थी, वह पूरी नहीं हो पा रही है। इसी की वजह से दलितों के नाम पर कुछ सुविधाभोगी लोग तरह-तरह के नारे देकर भेदभाव को खत्म करने की बजाय अलगाववादी भावना को उभारने में लगे हुए हैं। यह अलगाववादी भावना देश की एकता और अखंडता के लिए घातक है।

राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने मंडल आयोग की रिपोर्ट के आधार पर सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को न्याय देने के बारे में महत्वपूर्ण निर्णय लिये हैं।

प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह ने गत 7 अगस्त को संसद में इस आशय की घोषणा की है। उन्होंने कहा कि जिस संविधान को हमने आज से 40 वर्ष पूर्व अंगीकार किया था, उसमें यह परिकल्पना की गयी थी कि—

"अनुच्छेद 304 (1) के साथ पठित अनुच्छेद 15 (4) और अनुच्छेद 16 (4) के अनुसार सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की पहचान की जायेगी, उनकी कठिनाइयां दूर की जायेंगी तथा उनकी दशा को बेहतर बनाया जायेगा।" यह अपेक्षा आज तक पूरी नहीं की जा सकी जो कि हमारे संविधान के बुनियादी ढांचे के विपरीत है।

द्वितीय पिछड़ी जाति आयोग की नियुक्ति स्व. बी. पी. मंडल की अध्यक्षता में 1 जनवरी 1979 को की गयी थी जिसने अपनी रिपोर्ट 31 दिसंबर 1980 को प्रस्तुत की।

प्रधानमंत्री ने घोषणा की है कि सरकार ने मंडल आयोग की रिपोर्ट पर निम्नलिखित निर्णय लिये हैं—

(1) सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की सूचियां तैयार करने के संबंध में अनेक राज्यों के दीर्घ अनुभव का लाभ उठाने तथा सामंजस्यपूर्ण और त्वरित कार्यान्वयन सुरक्षित करने के लिए प्रथम चरण में उन सभी जातियों को लिया जायेगा, जो मंडल आयोग की सूची और राज्यों की सूची में समान हैं।

(2) सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का प्रतिशत 27 होगा।

(3) यह आरक्षण भारत सरकार तथा सार्वजनिक उपक्रमों के अधीन सेवाओं पर लागू होगा।

मंडल आयोग की रिपोर्ट एवं राज्यों की सूचियों में चिन्हित 90 प्रतिशत जातियां दोनों सूचियों में हैं। इसलिए पहले चरण में इन जातियों को शामिल किया गया है। शेष 10 प्रतिशत जातियों के लिए राज्य सरकारों से स्वयं निर्णय लेने के लिए कहा गया है।

भारत में भाषा, धर्म, जाति, संप्रदाय और भौगोलिक विषमता के कारण असमान विकास की बात की जाती है। इसी असमान विकास के कारण कई तरह की समस्याएं पैदा होती हैं। असमान विकास की प्रक्रिया की अनिवार्य विकृतियां कई तरह से सामने आती जाती हैं। इन विकृतियों को हम विभिन्न तरह की क्षेत्रीयतावादी, जाति, धर्म और संप्रदायवादी प्रवृत्तियों के रूप में देख सकते हैं। यह सब सामाजिक न्याय की कमी से ही होता है। इसे हम पूंजीवाद की तार्किक परिणति कह सकते हैं जिससे समाज में असमानता बढ़ती है।

सामाजिक न्याय इसलिए सभी को, खासतौर से शोषित-पीड़ितों को, मिलना चाहिए ताकि वे देश की विकास की गति के साथ आगे बढ़ सकें। असमानता और भेदभाव खत्म हो। सबको बराबरी का अधिकार मिलना चाहिए। समान कार्य के लिए समान वेतन हो, बंधुआ मजदूरी और बाल मजदूरी पूरी तरह से खत्म हो। हर एक को विकास का लाभ मिले। तभी हम कह सकते हैं कि सामाजिक न्याय हर व्यक्ति को मिल रहा है। अन्यथा बड़ी मछलियां हमेशा की तरह छोटी मछलियों को अपना आहार बनाती रहेंगी।

सी-7/18 ए, लारेंस रोड,
दिल्ली-110035

सामाजिक न्याय के प्रखर प्रवक्ता—डा. आम्बेडकर

वेद प्रकाश अरोड़ा

लेखक श्री वेद प्रकाश आरोड़ा ने पाठकों को भारतीय संविधान के अन्तर्गत सामाजिक न्याय की परिभाषा समझाकर उसके निर्माता बाबा साहेब के लिए श्रद्धा का भाव पैदा किया है किन्तु फिर भी भूखे की भूख रोटी के बारे में जान लेने से तो नहीं, खाने से ही मिटेगी।

डा. आम्बेडकर ने तो संविधान भारत को सौंप कर अपना कार्य समाप्त कर दिया। अब तो हम सब का यह कर्त्तव्य बनता है कि उनकी भावनाओं को व्यवहार में लाकर उनके सपनों को साकार करें।

हम उनके प्रति बहुत कुछ जानकर खुश हो सकते हैं और अधिक जानकारी से हमारे अन्दर उनके लिए अधिक आदर भी बढ़ सकता है किन्तु उनकी आत्मा तो प्रसन्न उस समय होगी जब रोता हंसेगा और भूखा तृप्त होगा।

कहते हैं कि वर्षों बाद भारत में डा. बाबा साहेब भीमराव आम्बेडकर के रूप में एक नया महान समाज सुधारक अवतरित हुआ। वे पददलितों के मुक्तिदाता, गरीबों के मसीहा और दबी कुचली मानवता के फौलादी संरक्षक थे। भारत के इतिहास में उन्होंने जो विशिष्ट प्रतिष्ठाजनक स्थान बनाया है, वह इसलिए नहीं बना कि वे एक धुआंधार लेखक, आनेमाने अर्थशास्त्री अथवा निपुण राजनीतिज्ञ थे या वकालत में उन्होंने बहुत यश कमाया या भारतीय गणराज्य के संविधान की मसौदा समिति की अध्यक्षता की या फिर उन्होंने संविधान सभा में भारतीय संविधान बनाने और पारित कराने में एक कुशल सूत्रधार और सुघड़ संचालक की बेहतरीन भूमिका निभाई, बल्कि यह स्थान बना है तो इसलिए कि उन्होंने जातपात के घिनौने संसार से अस्पृश्यों को बाहर निकाला तथा उन्हें सम्मान दिलाया, उन्हें अपनी ताकत का एहसास कराया, उनका सोया बल जगाया, उन्हें संगठित कर एक मंच पर ला खड़ा किया तथा उनके अधिकारों के लिए संघर्ष का बिगुल बजाया।

स्वप्नदृष्टा एवं संगठनकर्ता

वे न केवल एक स्वप्नदृष्टा बल्कि एक सुयोग्य संगठनकर्ता भी थे। वे ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों की दशा सुधारने के लिए और कृषि के मूल आधार खेतों में तेजी से उपज बढ़ाने के लिए कृषि-भूमि के राष्ट्रीयकरण के ध्वजारोही थे। उनका विचार था कि देहाती इलाकों में वर्तमान व्यवस्था से न केवल जाति प्रथा की जड़ें और मजबूत होती चली जायेंगी, बल्कि वह कृषि के विकास तथा देश की उन्नति में भी अड़चन बनी रहेगी। सवर्ण बड़े जमींदार या ऊंची जाति के लोग न तो स्वयं खेतों को जोतेंगे न ऐसे किसी दूसरे व्यक्ति को भूमि देंगे जो उनका अच्छे-से-अच्छा उपयोग कर सके। न वे यह जमीन खेत-मजदूरों को देंगे जो प्रायः अनुसूचित जातियों के होते हैं और जिनका वे कम-से-कम मजदूरी देकर अधिक-से-अधिक शोषण करते चले आ रहे हैं। इसीलिए डा. आम्बेडकर ने कृषि भूमि के राष्ट्रीयकरण की वकालत की। उनके अनुसार इससे न केवल उत्पादन बढ़ेगा बल्कि जाति प्रथा की रीढ़ तोड़ने में भी

सहायता मिलेगी। इस भेदभावपूर्ण जाति प्रथा के उन्मूलन के लिए उन्होंने मार्क्सवाद की सर्वहारा तानाशाही का अथवा वर्तमान व्यवस्था को हिंसा से उलटने का समर्थन नहीं किया। उन्होंने साम्यवाद के साथ-साथ पूंजीवाद का विरोध करते हुए संसदीय लोकतंत्र पर आधारित समाजवाद का प्रतिपादन किया। भारतीय संविधान के प्रारूपकार की हैसियत से इसी लीक पर चलते हुए उन्होंने जिन मोटे-मोटे सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, उनका ज्वलंत साक्षी हमारा संविधान है। उन्होंने दलितों को वाणी देने और साथ ही उस वाणी को दमदार बनाने के लिए अनुसूचित जाति संघ की स्थापना की और दलितों को इस संगठन के ध्वज के नीचे संगठित किया। इस संगठन के नेता की हैसियत से उन्होंने अनुसूचित जातियों के लिए संवैधानिक संरक्षण और सुरक्षा की मांग की। उनका कहना था कि "राजनीतिक सत्ता सामाजिक उन्नति की कुंजी है। अनुसूचित जातियां तभी अपनी मुक्ति पा सकेंगी जब वे तीसरी पार्टी के रूप में अपने को संगठित कर सत्ता संतुलन के सूत्र अपने हाथ में ले लें।" जाति प्रथा शोषण और प्रभुत्व कायम करने के लिए बनी है। इसे आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से प्रभावशाली समुदायों ने समाज के कमजोर वर्गों के शोषण का अस्त्र बनाया है।

भेदभाव के खिलाफ बगावत

डा. आम्बेडकर का उस समाज के खिलाफ विद्रोह का शंख फूंकना स्वभाविक था, जिसमें इंसान इंसान से नफरत ही नहीं करता था, बल्कि वह अपने से हेय समझे जाने वालों की परछाई तक से दूर रहता था, उनके आने-जाने के रास्ते अलग थे, रिहायशी बस्तियां अलग थीं, कुएं अलग थे, मंदिर अलग थे। एक पक्ष बात करने के लिए तरसता रहता था तो दूसरा उसे धुतकारता रहता था, परस्पर संप्रेषण-सम्पर्क के रास्ते भी अजीबोगरीब थे और मानव गरिमा से गिरे थे। कहीं पत्थरों पर कागज रखकर संदेश पहुंचाया जाता था तो कहीं दीवार पर कागज चिपकाकर। ये अन्त्यज सामने आकर या आंख उठाकर या बराबर खड़े होकर बात करने की उद्दण्डता नहीं कर सकते थे। स्कूलों में जाकर दूसरों के साथ बैठकर पढ़ने की तो कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। देवालयों की तरह शिक्षालयों के दरवाजे भी इन लोगों के लिए बंद थे। समाज में यह विद्रूपता जातपात अथवा वर्ण व्यवस्था में जन्मी विकृतियों से उत्पन्न हुई। क्योंकि जातपात कर्म से निर्धारण करने की बजाए जन्म, परिवार और कुल से होने लगी। कोई कितना ही विद्वान और शास्त्रों का प्रकांड पंडित हो, वह शूद्र के घर में उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण नहीं बन सकता था। क्यों? या फिर ब्राह्मण लड़के और शूद्र लड़की अथवा शूद्र लड़के और ब्राह्मण लड़की में प्रेम-परिण्य हो जाए तो उपद्रव छिड़ जाते या अभागे वर-वधू पर मुसीबत के पहाड़ टूट पड़ते। क्यों? जन्म पर आधारित जात-पात के इस झूठे आत्म सम्मान, ढोंग और जघन्य रूढ़ियों से ग्रस्त समाज के खिलाफ डा. भीमराव आम्बेडकर ने जोरदार बगावत का झंडा बुलंद किया।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 1932 में लंदन में भारतीय विद्यार्थियों की एक सभा में कहा था "डा. आम्बेडकर के लिए मेरे मन में गहरा सम्मान है। उन्हें मेरे प्रति कटु होने का सब प्रकार का अधिकार है। यह तो उनका आत्म संयम है...।"

सबसे पहले भगवान बुद्ध और दो शताब्दियों बाद सम्राट अशोक ने जातपात की प्रथा पर सीधा भरपूर वार किया था। बीच में सैकड़ों वर्षों के ठहराव और सड़ांध के बाद 17वीं और 18वीं शताब्दियों में कबीर, दादू, चैतन्य महाप्रभु और अन्य संतों ने छुआछूत को मानवता और ईश्वरीय विधान के विपरीत बताया। पिछली शताब्दी के आठवें दशक में ब्रह्म समाज ने अस्पृश्यता के कोढ़ पर प्रहार किया लेकिन कमजोर हाथों से। नब्बे के दशक में स्वामी विवेकानंद ने अस्पृश्यता के विरुद्ध तर्कों की ताकत से भरपूर प्रचार किया। बाद में स्वामी दयानंद ने तथा उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने हरिजनों को अन्य हिंदुओं के समान दर्जा देने तथा रूढ़िग्रस्त जातपात के विरुद्ध जबरदस्त अभियान छेड़ा जो आज भी जारी है। उन्होंने शुद्धि आंदोलन से अन्य धर्मों में गए दलितों और पिछड़े हिंदुओं को फिर हिंदू धर्म में दीक्षा दी तथा गले लगाया।

पहले विश्व युद्ध के बाद भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर महात्मा गांधी के उदय होने पर अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन में गति आई। उन्होंने इसे अपने राजनीतिक कार्यक्रम का प्रमुख अंग बनाया। लेकिन उन्होंने वर्णाश्रम धर्म पर भरपूर वार नहीं किया। यह काम डा. आम्बेडकर ने किया। उनका कहना था कि "सिवाए जन्मजात पागल के कोई भी चार वर्णों को सफलतापूर्वक पुनर्जीवित करने की आशा अथवा विश्वास नहीं रख सकता।" सामाजिक नवनिर्माण की व्याख्या करते हुए वे कहा करते थे "मेरा आदर्श समाज वह होगा जो समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के तीन सिद्धांतों पर टिका होगा।"

अस्पृश्यता निवारण आंदोलन

छुआछूत के विरुद्ध डा. आम्बेडकर के आंदोलन को तीन चरणों में बांट सकते हैं। पहले चरण का आरंभ 1920 में 'मूक नायक' नाम की पाक्षिक पत्रिका के प्रकाशन से हुआ। इस काल में उन्होंने दलितों के सामाजिक और धार्मिक अधिकारों पर अधिक जोर दिया। 1924 में उन्होंने 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। इसका उद्देश्य चार सूत्री कार्यक्रम के

द्वारा अस्पृश्यों की दशा सुधारना था। ये चार सूत्र थे—शिक्षा का प्रसार, संस्कृति का विकास, आर्थिक दशा में सुधार और अस्पृश्यों की शिकायतों का निवारण। 1929 में उन्होंने अपनी जाति बिरादरी के वास्ते महाद के सार्वजनिक तालाब के प्रयोग के लिए सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाया। इस आंदोलन ने उन्हें अखिल भारतीय स्तर का नेता बना दिया। उसी वर्ष उन्होंने पाक्षिक मराठी पत्र 'बहिष्कृत भारत' निकाला। बाद में इसी का नाम उन्होंने 'जनता' रख दिया। उन्होंने एक जनसभा में अस्पृश्यता की अनुमति देने वाले समाज के कानूनों और प्रथाओं के विरोध में कड़ी भर्त्सना की। दो मार्च 1930 को महात्मा गांधी के प्रसिद्ध डांडी यात्रा से दस दिन पहले उन्होंने नासिक के एक मंदिर में प्रवेश का आंदोलन चलाया, जो उनके अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रम का महत्वपूर्ण मील का पत्थर बन गया। 1935 में लंदन में आयोजित गोल मेज सम्मेलन के साथ अस्पृश्यता के विरुद्ध उनके आंदोलन का दूसरा चरण शुरू हुआ। इस सम्मेलन में उन्होंने दलित वर्गों के अधिकारों की जोरदार वकालत की। इस काल-खंड में डा. आम्बेडकर ने सामाजिक और धार्मिक अधिकारों के बजाए राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों पर अधिक जोर दिया। उन्होंने दलित वर्गों के लिए पृथक चुनाव क्षेत्रों और विशेष-प्रतिनिधित्व की मांग की, जिसे मैकडोनाल्ड अवार्ड में स्वीकार कर लिया गया। इस पर महात्मा गांधी ने दलितों को शेष हिंदुओं से अलग करने के विरुद्ध आमरण अनशन शुरू किया। इस अनशन के परिणामस्वरूप प्रसिद्ध पूना पैक्ट हुआ जिसके अंतर्गत डा. आम्बेडकर ने अलग चुनाव क्षेत्रों की मांग छोड़ दी और सवर्ण हिंदुओं ने दलितों के साथ संयुक्त चुनाव क्षेत्र बरकरार रखते हुए उनके लिए सीटों का आरक्षण मंजूर कर लिया। दलितों के लिए सीटों का कोटा काफी बढ़ा दिया गया। अक्तूबर, 1935 में उन्होंने येओला सम्मेलन में अपने समुदाय के लोगों को बौद्ध धर्म अपनाकर आत्मसम्मान की रक्षा करने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि दलितों के लिए ईश्वर के पूजापाठ से रोटी का महत्व अधिक है। इसी बात को लेकर उनका हरिजनों के हितों के शीर्षस्थ समर्थक महात्मा गांधी से टकराव हो गया। महात्मा गांधी ने डा. आम्बेडकर के धर्म परिवर्तन के आंदोलन का जोरदार विरोध किया। लेकिन दलितों को अधिकार दिलाने के लिए इन दोनों महान विभूतियों के आंदोलन एक-दूसरे के पूरक और सहायक थे। श्री कृष्णलाल श्रीधरानी ने कहा था "इतिहास में पहली बार कथित अस्पृश्य, अपनी लड़ाई खुद लड़ने के लिए उठ खड़े हुए। यह एक आंतरिक विद्रोह था, बाहर से थोपा गया सुधार नहीं।" यह विद्रोह भी डा. आम्बेडकर के अंदर इसलिए जमा कि वे जीवनपर्यन्त सवर्णों के अत्याचारों के शिकार होते रहे। यह बात उनके जीवनवृत्त से साफ उजागर हो जाती है।

जीवन वृत्त

उनका जन्म 14 अप्रैल 1891 में महाराष्ट्र के एक महार परिवार में हुआ, जिसकी छाया से दूसरे व्यक्ति अपवित्र तथा स्पर्श से दूषित हो जाते थे। इस सबकी परवाह न करते हुए उन्होंने अपनी लगन और अडिग संकल्प के सहारे 1907 में 17 वर्ष की आयु में मैट्रिक परीक्षा पास कर ली। 1913 में अमरीका में उच्चतर अध्ययन के लिए उन्होंने महाराजा बड़ोदरा से छात्रवृत्ति प्राप्त की। उन्होंने न्यूयार्क में कोलंबिया विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पी-एचडी की डिग्री प्राप्त की। 1917 में भारत लौटने पर उन्हें महाराजा बड़ौदा का सैनिक सचिव नियुक्त किया गया। इसके बावजूद सवर्ण हिंदू उनके साथ एक सामाजिक कोढ़ी का-सा बर्ताव करते रहे। कई कठिनाइयों के बाद उन्हें पारसी सराय में रिहायशी मकान मिला। लेकिन सवर्ण हिंदुओं ने पारसी मालिक पर जोर डालकर उन्हें वहां से निकलवा कर ही दम लिया। इस अपमान को बर्दाश्त न कर वे बड़ोदरा से बम्बई चले गए। वहां उन्हें सिडनहम कालेज आफ कामर्स में अर्थशास्त्र का प्रोफेसर नियुक्त किया गया। लेकिन उनके मन में छुआछूत मिटाने की आग इतनी भड़की हुई थी कि उन्होंने वकालत का धंधा शुरू कर यह सामाजिक कार्य करने का महान बीड़ा उठाया। जुलाई, 1920 में लंदन जाकर उन्होंने न सिर्फ वकालत की बल्कि अर्थशास्त्र में डाक्टर ऑफ साइंस की उपाधि ली। उन्होंने कुछ महीने जर्मनी के नॉन विश्वविद्यालय में भी अध्ययन किया। 1923 में भारत लौटकर उन्होंने बम्बई हाई कोर्ट में वकालत करनी शुरू कर दी। दलितों के नेता के रूप में ख्याति फैलने पर सरकार ने उन्हें 1927 में बम्बई विधान परिषद का सदस्य मनोनीत कर दिया। उन्होंने सवर्णों के साथ पुणे पैक्ट कर जहां महात्मा गांधी के जीवन की रक्षा की वहां दलित वर्गों के लिए बेहतर सुविधाएं प्राप्त कीं। दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ने के पश्चात उन्हें पहले जुलाई 1941 में रक्षा सलाहकार समिति का सदस्य बनाया गया और एक वर्ष बाद वायसराय की एग्जीक्यूटिव परिषद का श्रम सदस्य बनाया गया। स्वाधीनता मिलने के बाद अगस्त 1947 में उन्हें कानून मंत्री बनाया गया। बाद में संविधान सभा ने श्री आम्बेडकर को मसौदा समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया और इस तरह जिस अस्पृश्य को होटलों, छात्रावासों, सैलूनों और मंदिरों से निकाल दिया गया था वही व्यक्ति मातृभूमि के संविधान का शिल्पी बना। उनके लिए भारत के भूतपूर्व प्रधान न्यायाधीश गजेंद्रगडकर ने कहा था

है कि "राज्य विशिष्ट रूप से, ऐसी नीति अपनायेगा जिससे आर्थिक व्यवस्था के प्रचलन से जनसाधारण के हितों के विरुद्ध धन एवं उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण न हो सके।"

उपरोक्त विवरण से यह विदित हुआ है कि सामाजिक न्याय के दो पहलू हैं—(क) सामाजिक और (ख) आर्थिक/विकास और समानता के दो उद्देश्यों की उपलब्धि को मूल रूप में ध्यान में रखते हुए हमें सामाजिक व आर्थिक पहलुओं की व्यवस्था के मूल में ही सामाजिक न्याय की कल्पना अथवा यथार्थता को आंकना होगा।

सामाजिक पहलू

यद्यपि भारतीय गणराज्य में धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्र तथा आर्थिक समानता के प्रगतिशील मूल्यों को स्वीकारा गया है, लेकिन आज भी यहां धर्म, भाषा, जाति एवं प्रजाति के आधार पर अनेक भेदभाव पाये जाते हैं—निर्धनता व्याप्त है तथा अमीर व गरीब के बीच का अन्तर विद्यमान है। सामाजिक आधार पर ऊंच-नीच का एक संस्तरण स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो रहा है। जातिवाद, भाषावाद, प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता आदि समस्याएं सामाजिक जनजीवन के सम्मुख जटिलता उत्पन्न कर रही हैं। समाज के कमजोर वर्ग को निरक्षरता, निम्न जीवन स्तर, जनसंख्या वृद्धि तथा राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार का शिकार होना पड़ा है। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण जैसी समस्याओं का सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव इसी वर्ग पर पड़ा है। यद्यपि इस सामाजिक विषमता को दूर करने हेतु संवैधानिक संरक्षण का क्रियान्वयन किया गया, तो भी चार दशकों के प्रयासों के बावजूद भी हमारा सामाजिक न्याय का लक्ष्य अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुंच पाया है। कमजोर वर्गों को शोषण व उत्पीड़न का सामना करना पड़ा है। आज यदि सामाजिक न्याय के लक्ष्य को वास्तविक धरातल पर उतारना है तो जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रीयता व साम्प्रदायिकता जैसी समस्याओं को समूल नष्ट करना होगा। डा. आम्बेडकर ने कहा था कि साम्प्रदायिकता गुटबाजी की भावना है जिसका आधार संकुचित हित या हीन धार्मिक कट्टरता है। साम्प्रदायिकता में विश्वास करने वाली जातियां या धर्म आपस में घृणा एवं वैर की भावना उत्पन्न कर लेते हैं। जब तक समाज में एक-दूसरे को भय एवं शत्रुता की भावनाओं से देखते हैं तब तक सामाजिक प्रगति एवं राजनीति दृढ़ता नहीं हो सकती।

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति

1981 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार देश की जनसंख्या का 23 प्रतिशत भाग अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति का है। हमारे समाज में अनुसूचित जाति के लोगों को अस्पृश्यता के नाम पर मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया तथा इन लोगों पर सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक निर्योग्यताएं लाद दी गई जिसके कारण इन्हें निम्न स्तर का जीवन बिताना पड़ा। वर्तमान में अस्पृश्यों एवं अनुसूचित जातियों की समस्या प्रमुखतः सामाजिक व आर्थिक है न कि धार्मिक और राजनीतिक। यह सत्य है भारत सरकार ने इनकी स्थिति सुधारने तथा ममता नीति के प्रति स्पष्ट प्रतिबद्धता दिखाई है, लेकिन अनुसूचित जातियों के कल्याण हेतु अब तक किए गए उपायों में संवैधानिक प्रावधान, शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं, विधानमण्डलों एवं पंचायतों में प्रतिनिधित्व, कल्याण एवं सलाहकार संगठन, सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व तथा आर्थिक उत्थान हेतु प्रयासों को गति दी गई। लेकिन दीर्घावधि से सब प्रकार के हितों से वंचित तथा चेतनाशून्य होने के कारण इनकी स्थिति में सुधार लाने में कुछ और समय लगेगा। लेकिन साथ में यह भी सत्य है कि इनके लिए किए गए कल्याण कार्यों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली राजनीतिक चेतना तथा अधिकारों के प्रति जागरुकता से सवर्णों एवं अवर्णों के बीच संघर्ष उत्पन्न हुए हैं। दूसरी ओर अनुसूचित जनजाति के मध्य भी वर्ग भेद पनपा है। संवैधानिक व्यवस्थाओं का लाभ कुछ ही परिवार उठाकर और अपनी आर्थिक स्थिति सुधार कर अन्य लोगों से उच्च समझने लगे हैं। सामाजिक न्याय के मार्ग में यह बड़ी विडम्बना है कि इन लोगों की स्वयं के परिवार के उत्थान में तो रुचि है किन्तु अन्य लोगों के व्यापक हित में कार्य करने का अभाव है।

अनुसूचित जनजाति के लोगों के सन्दर्भ में तो सामाजिक न्याय का उद्देश्य प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ है। जनजाति के लोगों का व्यापारियों एवं सूदखोरों द्वारा अत्यधिक शोषण हुआ। कम मजदूरी पर अधिक श्रम लिया जाना चालू है। सूदखोरों ने इन लोगों की जमीन कम दरों में खरीद ली और अपने ही घर में वे परायों की तरह कृषि मजदूर के रूप में कार्य करने लगे। कभी-कभी इनसे बेगार भी ली गयी। इन सब स्थितियों से आदिवासियों में धार्मिक व सामाजिक एकता का संकट उत्पन्न हो गया तथा साथ में सांस्कृतिक एवं राजनीतिक समस्याएं खड़ी हो गयी।

कतिपय बुद्धिजीवियों, स्वयंसेवी संस्थाओं तथा सरकार ने अपने प्रयत्नों से जनजाति कल्याण आरम्भ किए जिनमें संसदीय समितियों, राज्यों के कल्याण विभाग जैसी कल्याणकारी एवं सलाहकारी संस्थाओं के अतिरिक्त इन लोगों को विधानमण्डलों में प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था, राजकीय सेवाओं में आरक्षण, राज्य क्षेत्र योजनाएं, जनजातीय नीति जैसे प्रावधान भी शामिल हैं। लेकिन फिर भी इस वर्ग को अपने

कमजोर संसाधन आधार के कारण अनेक प्रावधानों के न्यूनतम स्तर को ही स्पर्श करने के कारण सामाजिक न्याय की परिधि के अन्तर्गत नहीं पहुंच पाया। आज भी जनजातियों का पृथक निवास होने के कारण इनकी भाषा, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, जीवन पद्धति एवं राजनीतिक व्यवस्था बिल्कुल भिन्न है। इसका मुख्य कारण यह है कि अधिकांश जनजातियां पहाड़ी एवं वन प्रदेशों में निवास करती हैं। कई जनजातियां देश के सीमावर्ती क्षेत्रों में रहती हैं। विस्थापन एवं पुनर्वास की यह समस्या आज तक हल नहीं हो पाई है।

जनजातियां नवीन अर्थव्यवस्था के सम्पर्क में आयी हैं और उनमें से ही कुछ नये उद्यमकर्ता बने हैं और वे ही अब अपने लोगों से बेगार ले रहे हैं तथा उनका शोषण कर रहे हैं। कुछ जनजातियों के नाम आज भी राजनीतिक कारणों से अनुसूची में नहीं जुड़ने से नई समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं। विभिन्न जातियों को राष्ट्रीय मुख्य धारा में जोड़ने एवं उनके एकीकरण करने की भी समस्या का संतोषजनक हल नहीं निकला है। स्वास्थ्य, शिक्षा एवं राजनीतिक चेतना सम्बन्धी समस्याएं भी यथावत बनी हुई हैं। इन अनेक समस्याओं से विक्षुब्ध होकर डा. आम्बेडकर को लिखना पड़ा:

"क्या ऐसा कोई समाज है जिसमें आज भी आदिवासी हों, जो जंगलों में रहते हों, जिनको कपड़ा तक नहीं पहनना आता हो? ऐसे व्यक्तियों की संख्या कितनी है? क्या यह सैकड़ों की बात है? क्या यह हजारों की बात है? काश! इनकी संख्या बहुत कम होती? खेद की बात तो यह है कि इनकी संख्या करोड़ों में है।"

7 अगस्त 1990 को प्रधानमंत्री ने मंडल आयोग की प्रमुख सिफारिशों को लागू करने की घोषणा करके जातियों में वर्गीकृत वर्तमान समाज में सामाजिक परिवर्तन लाने तथा सभी वर्गों को न्याय सुलभ की ओर एक महत्वपूर्ण पहल है। आयोग की सिफारिश थी कि सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के लिये सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था की जाये। पिछड़े वर्ग में करीब 3047 जातियां हैं। इन पिछड़ी जातियों के लिये सरकारी नौकरियों और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में 27 प्रतिशत आरक्षित करने का निर्णय न केवल इन्हें सरकारी नौकरियों में स्थान दिलायेगा बल्कि सत्तातंत्र में भागीदारी को भी आसान बनायेगा। यद्यपि आरम्भ में आरक्षण का लाभ उन्हीं जातियों को मिल पायेगा जिनके नाम मंडल आयोग की सूची में राज्य सरकार द्वारा तैयार पिछड़े वर्गों की सूची में समान रूप पाये जाएंगे। यद्यपि इस सूची में भी अनेक विसंगतियां हैं, फिर भी जब इस पर अमल चालू हो जायेगा तो धीरे-धीरे अन्य कार्य भी आसान हो जायेंगे। साथ ही लोकतंत्र अधिक सार्थकता की पगडंडी पर प्रशस्त होगा।

अतः सामाजिक पहलू के परिप्रेक्ष्य में हम कुछ उपलब्धियों के बावजूद भी अनेक कारणों से सामाजिक न्याय की वास्तविकता तक पूर्णतः नहीं पहुंच पाये हैं। अभी भी इस दिशा में काफी कुछ सफर तय करके अपेक्षित स्तर तक पहुंचना शेष है।

आर्थिक पहलू

आर्थिक सम्बंध में सामाजिक न्याय का अर्थ है कि योजनाबद्ध विकास प्रक्रिया के परिणामस्वरूप आय व धन की समानता बढ़े अर्थात् आय, धन तथा आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण, क्रमशः घटता जाये और समाज के अपेक्षाकृत कम सुविधा प्राप्त वर्ग को आर्थिक वृद्धि के लाभ मिले। अतः हमारी योजनाओं का प्राथमिक उद्देश्य पुनर्वितरण के साथ विकास करना है। योजनाकाल में बहुत सारी पुनर्वितरणात्मक अपनाई गई जिसमें प्रमुख हैं, तीव्रभूमि सुधार, काश्तकारी सुधार, शहरी व निगमिक भूमि का राष्ट्रीयकरण, गरीबों के पक्ष में वस्तुओं व सेवाओं का अधिक प्रभावी वितरण, दोहरी कीमत, छोटे उत्पादकों व किसानों के लिए उपभोग वस्तुओं के वितरण के लिए एक सशक्त सामाजिक वितरण प्रणाली। योजनाओं में पिछड़े क्षेत्रों व वर्गों के विकास व संवर्द्धन के लिए कई प्रावधान हैं। आय की असमानताओं को कम करने के लिए योजना में आय नीति पर भी बल दिया गया है। इसमें प्रत्येक कार्यक्रम में स्वचालित पुनर्वितरणात्मक चरित्र सहित ग्रामीण क्षेत्रों के पक्ष में व्यापक स्तर पर साधनों का स्थानान्तरण भी शामिल है।

आठवीं योजना में भी इस बात की तात्कालिक आवश्यकता व्यक्त की गई कि बेरोजगारी, निरक्षरता, अस्वस्थता और कमजोर तथा गरीब वर्गों के लोगों के रहन-सहन की स्थितियों में गिरावट की ओर ध्यान देकर असंतोष और अशान्ति के स्रोतों को खत्म किया जाये। इस बात की भी उतनी ही आवश्यता है कि केवल न्यायसंगत सामाजिक स्थिति ही सृजित न की जाये बल्कि ऐसी स्थिति भी पैदा की जाये जो न्यायोचित भी प्रतीत हो। केवल इसी आधार पर हम शांति की नींव रख सकते हैं और सामाजिक ताने बाने में इसकी एकता और आत्मविश्वास को फिर से गूंजा सकते हैं।

सामाजिक न्याय की उपलब्धि में कठिनाइयां

गरीबी, बेरोजगारी और असमानताएं एक-दूसरे का कारण और परिणाम होने के कारण योजनाबद्ध आर्थिक विकास के अन्तर्गत सामाजिक न्याय के उद्देश्य की पूर्ति को कठिन बना दिया है। भारत में प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के साथ बेरोजगारी बढ़ती गई। प्रथम योजना के प्रारंभ में जहां बेरोजगारों की

संख्या 33 लाख थी वह अब बढ़कर 3 करोड़ हो गयी है। जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि के कारण नये लोग श्रम बाजार में प्रविष्ट हो गए। जनसंख्या औसतन 2.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ी है और यह वृद्धि प्रमुख रूप से समाज के निम्न वर्ग, मध्य तथा गरीब वर्गों में हुई है। एक ओर तो पहले से ही उनकी आय के स्तर नीचे और बेरोजगारी की दर ऊंची थी परिवार के सदस्य बढ़ जाने से उनकी आय और भी घट गई जिससे वे दरिद्रता की रेखा तक पहुंच गए। छोटे-छोटे जोतों पर बड़े परिवारों के दबाव बढ़ गये हैं। इससे विवश होकर उन्हें अपनी अपर्याप्त भूमि बड़े भू-स्वामियों को बेचनी पड़ी जिसके परिणामस्वरूप आय तथा धन की असमानताएं बढ़ गई हैं। देश का आर्थिक विकास पर्याप्त मात्रा में नहीं हो पाया, कृषि में नवीन विधियों का उपयोग लगभग 25 वर्षों से ही विशेष रूप से प्रारंभ हुआ है। ग्रामीण औद्योगीकरण की दिशा में विशेष प्रगति नहीं हुई है। सरकार के पास विकास के लिए साधनों का अभाव रहा है तथा देश की शिक्षा प्रणाली का नियोजित आर्थिक विकास से तालमेल स्थापित नहीं हो पाया है। देश के सामाजिक पिछड़ेपन ने श्रम की गतिशीलता में बाधा डाली है।

सामाजिक न्याय में बाधक एक तीक्ष्ण समस्या उत्पादन के साधनों का अनुचित वितरण भी रहा है। इन उत्पादन साधनों में भूमि का महत्वपूर्ण स्थान है। देश की गांवों में रहने वाली 76.6 प्रतिशत जनसंख्या किसी न किसी रूप में भूमि पर निर्भर है। लेकिन भू-स्वामियों और काश्तकारों की आय में बहुत अन्तर है। लगभग 20 प्रतिशत लोगों के पास अपनी कोई भूमि नहीं है। थोड़ी-सी ग्रामीण आबादी को छोड़कर अधिकांश के पास अलाभकारी छोटी जोते हैं। आज देश में व्यवहार्य परिचालन जोतों की संख्या 9 करोड़ के करीब है। 1971 व 1981 के बीच यह संख्या 7.1 करोड़ से बढ़कर 8.9 करोड़ हो गयी, लेकिन कुल क्षेत्रफल स्थिर रहने से औसत जोत की सीमा घट गई। 1971 से 1981 के बीच सीमान्त जोतों की संख्या 50 प्रतिशत से बढ़कर 56.6 प्रतिशत हो गयी और गरीबों की संख्या में 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। देश में अब तक हुए भूमि सुधार आय तथा धन की असमानता को दूर करने में विफल रहे हैं। योजनाकाल में भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों में बाढ़-सी आ गयी थी। विभिन्न राज्यों ने आवश्यक अधिनियम भी पारित किए, लेकिन क्रियान्वयन में पर्याप्त तत्परता व गम्भीरता नहीं दिखायी, बल्कि अनावश्यक देरी व ढील-ढाल दिखाई दी जिससे प्राप्त परिणाम निराशाजनक रहे। कानूनों पर पूरी तरह से अमल नहीं हुआ। कहीं-कहीं तो कानूनों में कुछ छिद्र छोड़ दिए गए जिससे निहित स्वार्थी वर्ग द्वारा आदालत में चुनौती दी गई। सरकारी प्रकाशनों में भी स्वीकारा गया है कि सहकारी कृषि, सीमा निर्धारण से अतिरिक्त भूमि को प्राप्त करने तथा उस पर भूमिहीन मजदूरों को बसाने व काश्तकारों को भू-स्वामित्व का अधिकार प्रदान करने की दिशा में पर्याप्त प्रगति नहीं हुई है।

भूमि सुधार कानूनों का लाभ विस्तृत क्षेत्रों में काश्तकारों को नहीं मिल पाया है। खुद काश्त के नाम पर भूमिपतियों ने काफी जमीन स्वयं दबा कर काश्तकारों को बेदखल किया है। काश्तकारों को ऐच्छिक परित्याग करने को बाध्य किया गया। भूमिहीन श्रमिकों को मुजारों के रूप में काम करने के बाद भी उपज का उचित भाग नहीं मिलता। बन्धक मजदूरों की भांति अत्यधिक निर्धनता में जीवन व्यतीत करते हैं। पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश को छोड़कर कहीं भी चकबन्दी नहीं हुई है। सीमा निर्धारण से बचने के लिए अनियमित व अवैधानिक अन्तरण भी किए गए हैं और अतिरिक्त भूमि नगण्य मात्रा में ही मिल पायी है।

उत्पादन का एक अन्य महत्वपूर्ण साधन पूंजी है। भारत जैसे विकासशील देश में जहां निर्धन लोग रहते हैं, पूंजी दुलर्भ मानी गई, लेकिन यह थोड़े-से धनी लोगों के हाथों में संकेन्द्रित है और वे इसका उपयोग अपने निजी हितों के लिए करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भी धनी कृषकों ने ट्रैक्टरों, पानी की मोटरों, उर्वरकों तथा अच्छे बीजों का उपयोग करके कृषि को यंत्रीकृत बना दिया है। दूसरी ओर शहरी क्षेत्रों में मुट्ठी भर व्यापार गृहों में (जिनके पास अधिकांश पूंजी है) अपने धन में अपार वृद्धि की है। ग्रामीण तथा शहरी दोनों ही क्षेत्रों में पूंजी गहन तकनीक के उपयोग से वितरणात्मक अन्याय में वृद्धि हुई है क्योंकि इससे जनसाधारण अपेक्षाकृत अधिक तथा लाभदायक रोजगार अवसरों से वंचित रहे हैं।

सामाजिक न्याय के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने में कुछ सीमा तक राजकोषीय एवं मुद्रा नीति को भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। कराधान नीतियों के कारण आय व धन की असमानताएं बढ़ी हैं। अप्रत्यक्ष करों पर अधिक सीमा तक निर्भर रहने के कारण आयोजना काल में इनमें वृद्धि होती रही जिसके परिणामस्वरूप निम्न और मध्य आय वर्ग तथा समाज का निर्धन वर्ग अनवरत रूप से करों के दबाव से दरिद्र होते चले गए। इसके विपरीत प्रत्यक्ष करों का भाग घटता गया जिससे उच्च मध्य एवं उच्चतर आय वाले वर्गों की स्थिति बेहतर होती गयी (क्योंकि प्रत्यक्ष करों का बोझ इन्हीं लोगों पर पड़ता है)। इस अवरोही एवं अनुचित कराधान ढांचे के कारण सामाजिक न्याय कम हुआ है।

कर चोरी व अनेक अन्य कारणों से काली मुद्रा का तेजी से

प्रसार हुआ है। 1980-81 में जितनी आय पर कर लगाया जाना चाहिए था उसके लगभग 3/4 भाग पर कर की चोरी की गई है अथवा कर नहीं चुकाया गया है। 1983-84 में सकल घरेलू उत्पत्ति का 1/5 अंश काली आमदनी का शिकार हो चुका था। मार्च, 1985 में सार्वजनिक वित्त एवं नीति पर राष्ट्रीय संस्थान दिल्ली की प्रकाशित रिपोर्ट से पता चलता है कि यह समस्या काफी गहन व जटिल हो गयी है। काले धन को एकत्रित करने वाले व्यक्ति अधिक धनी बनते जा रहे हैं, चाहे फिर इसका कारण कराधान विषयक कानूनों की त्रुटियां ही क्यों न हों।

भारतीय कम्पनियों को दी जाने वाली विभिन्न रियायतों (छूट) के फलस्वरूप इन कम्पनियों ने शानदार लाभ अर्जित किया है लेकिन कर नहीं दिया। कई कम्पनियों ने तो वर्तमान कर प्रणाली से इसे निचोड़ने में असाधारण कुशलता दिखायी। कर में दी जाने वाली कुछ छूटें ऐसी भी हैं जो पूंजी गहन निर्देशों को प्रोत्साहन देती हैं और श्रम गहन निर्देशों को हतोत्साहित करती हैं। इस तरह की ये कर छूटें, जिन्हें "निवेश छूट" कहा जाता है, अपरिपक्व औद्योगिक इकाइयों में लगाए गए प्लान्ट तथा मशीनरी की लागत के 25% से 35% के बराबर दर पर उपलब्ध है। इस प्रकार की छूट सामाजिक न्याय के सिद्धांत के विपरीत सिद्ध होती है क्योंकि यह श्रम बचत औद्योगिकी में निवेश को प्रोत्साहन देता है जिससे कम लोगों को रोजगार मिलता है और परिणामस्वरूप धनी व निर्धन के बीच का अन्तराल उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है।

हाल में कृषि क्षेत्र में भी सीमित प्रकृति के पूंजीवाद का उदय हुआ है। कुछ भागों में कृषक काफी समृद्ध हो गए हैं लेकिन उन पर कोई कृषि कर नहीं लगता बल्कि प्रभावशाली किसान राज्य से अनेक छूटें, प्रोत्साहन एवं छूटे लेने में सफल हो जाते हैं। इससे उनकी स्थिति अच्छी हो गयी है और सीमान्त किसानों की दशा बिगड़ गई है क्योंकि सीमान्त कृषक के पास छूटों व सुविधाओं से लाभ उठाने के पर्याप्त साधन नहीं हैं। इससे भी सामाजिक न्याय पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। द्वितीय योजनाकाल से मूल्य स्तर में होने वाली वृद्धि वितरणात्मक अन्याय को वर्तमान स्वरूप का महत्वपूर्ण कारण रहा है। कीमतों के निरन्तर बढ़ने से मजदूर वर्ग, मध्य वर्ग, भूमिहीन कृषि मजदूर, सीमान्त कृषक एवं अन्य निम्न वर्ग दरिद्रता की दल-दल में फंस गया है। दूसरी ओर व्यापारी, सटोरिये, मुनाफाखोर, उद्योगपति तथा बड़े जमींदार बहुत अधिक आय अर्जित करके धन संग्रह करते रहे हैं। मूल्य स्तर में वृद्धि का प्रभाव कारण योजनाओं में अनियन्त्रित रूप से घाटे की वित्त व्यवस्था का उपयोग करना रहा है। साथ में खाद्यान्नों के अभाव ने मुद्रास्फीति को प्रोत्साहन दिया। इससे खाद्यान्नों के भाव बढ़े और उपभोक्ता वर्ग को कष्ट उठाने पड़े, व्यापारियों को आकस्मिक लाभ प्राप्त हुए और समाज में आय व धन की असमानताएं बढ़ी हैं।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हुआ कि अनेक सामाजिकार्थिक बाधाओं एवं तत्वों ने सामाजिक न्याय के मार्ग को अवरुद्ध किया है। आय व धन की बढ़ती असमानताएं, व्यापारिक घरानों के हाथों में आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण तथा समाज के अपेक्षाकृत कम सुविधा प्राप्त वर्ग को आर्थिक वृद्धि का अपेक्षित लाभ न मिलना इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

सामाजिक न्याय की वृद्धि हेतु कतिपय सुझाव

(1) समूह मनोबल का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग करके सामाजिक समस्याओं का निराकरण करना होगा। एक समाज का मनोबल या आत्मविश्वास न केवल सामान्य जनता पर निर्भर करता है बल्कि उस नेतृत्व पर भी जो अपनी समस्याओं को हर सम्भव नवीन प्राविधियों को काम में लेते हुए हल करने के लिए पूर्णतः इच्छुक हो। सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए नियोजित परिवर्तनों के प्रयत्नों का न्यूनतम प्रयोग करना उचित होगा।

(2) बहुकारकवादी दृष्टिकोण, पारस्परिक सम्बन्ध तथा सापेक्षिकता—तीनों दृष्टिकोणों के आधार पर ही सामाजिक समस्याओं से छुटकारा प्राप्त करना सम्भव है, लेकिन फिर भी ऐसे समाज की कल्पना करना कठिन है जो समस्याओं से पूर्णतः मुक्त हो। इतना अवश्य है कि अलग-अलग कालों और समाज में सामाजिक समस्याओं की मात्रा और गम्भीरता में अन्तर अवश्य पाया जाता है। समय का यह तकाजा है कि नेता लोग जनता को समस्या के निराकरण के सम्बन्ध में स्वस्थ विचार प्रदान करें और समस्या को हल करने में सफलता प्राप्ति से पूर्व सफलता की एक लहर या वातावरण तैयार करके लोगों में एक सामूहिक अभिरुचि उत्पन्न कर सकते हैं।

(3) समाज में ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में भूमि, पूंजी आदि का वितरण अधिक समान बनाकर आय की असमानता को दूर किया जाना चाहिए। इसके लिए आवश्यकतानुसार सहकारी संगठन का विस्तार किया जा सकता है एवं सार्वजनिक उपक्रमों में व निजी उपक्रमों में श्रम की प्रबन्ध, पूंजी व लाभ में साझेदारी की व्यवस्था की जा सकती है। इससे पूंजी के विकिरण की प्रक्रिया आरम्भ होगी।

(4) भारत को, आने वाले वर्षों में अपनी सम्पूर्ण शक्ति को स्थायी किस्म के रोजगार के अवसर बढ़ाने में लगायी जानी चाहिए। इसके लिए सीमित वित्तीय साधनों को ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में मजदूरी रोजगार बढ़ाने में प्रयुक्त करना होगा ताकि सामुदायिक परिसम्पतियों का निर्माण किया जा सके और देश में उत्पादन क्षमता बढ़े। यह सब करने के लिए जिला एवं खण्ड नियोजन के अन्तर्गत सुदृढ़ परियोजनाओं के चयन की आवश्यकता है ताकि लोगों की क्रय शक्ति बढ़े तथा साथ में उपभोग वस्तुओं की आपूर्ति भी। इस विकास रणनीति से मध्यम व निम्न वर्ग को अधिक सहायता मिल पायेगी।

(5) अर्थव्यवस्था को अत्यधिक उत्पादक, कार्यकुशल व विकासोन्मुख बनाया जाना चाहिए जिससे "रोटी को बांटने से पूर्व इसका आकार बढ़ सके।" विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को चाहिए कि पहले वे अपने उत्पादन को ठीक करें तभी आगे चलकर उनका वितरण ठीक हो पायेगा।

(6) वस्तुतः आय व धन की असमानताएं घटाने के उद्देश्य से अपनाये गए नीति सम्बन्धी उपायों की प्रकृति पुनर्वितरणात्मक होनी चाहिए। उन्हें इस ढंग से क्रियान्वित करना चाहिए जिससे धीरे-धीरे उत्पादन के साधनों का समाजीकरण हो, आर्थिक संकेन्द्रण घटे और जनसाधारण के आय स्तर बढ़े। सभी उपाय आय को पुनर्वितरण करने तथा दरिद्रता घटाने का दोहरा काम करें। इस हेतु सर्वप्रथम भूमि का पुनर्वितरण किया जाये। इसके लिए जोतों की अन्तिम सीमा सम्बन्धी कानून पर अमल करना, पट्टे की शर्तों में सुधार तथा सस्ती एवं पर्याप्त ऋण सुविधाओं, अच्छे बीजों, रासायनिक खाद एवं कृषि उत्पादन के विपणन की व्यवस्था की जाये। ग्रामीण क्षेत्रों में अकुशल श्रमिक को रोजगार के सुअवसर प्रदान करने के लिए उपयुक्त सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम बनाये जायें, फसल उत्पादन प्रथाओं को विस्तृत किया जाये और कृषि आधारित एवं ग्राम उद्योगों की स्थापना करके कृषकों को लाभदायक रोजगार दिया जाये। श्रम गहन औद्योगीकरण पर बल देकर बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से वित्त की व्यवस्था की जाये साथ में कच्चे माल की पूर्तियां और विपणन की सुविधा भी किसानों को देनी होगी।

(7) सफल आय वितरण के लिए अर्थव्यवस्था के संगठित एवं असंगठित दोनों ही क्षेत्रों के लिए मजदूरी सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति का होना आवश्यक है। इस हेतु यह सुनिश्चित करना भी जरूरी है कि औद्योगिक मजदूरों को न केवल नियत न्यूनतम मजदूरी मिले अपितु जोड़े गए कुल मूल्य में भी मजदूरी का भाग मिले। कृषि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को अविलम्ब प्रभावी बनाया जाये। साथ ही कीमत स्तर का स्थिरीकरण, सामाजिक सुरक्षा के उपाय तथा जनसंख्या नियंत्रण जैसे पहलुओं पर तुरन्त ध्यान देना चाहिए।

(8) उत्पादन के साधनों में असमानता को क्रम से कम करने और आय वितरण सुधारने के लिए अधिक रोजगार सृजित करना एक कारगर उपाय है, यह भी गहन श्रम तकनीकों के प्रयोग से। अर्थव्यवस्था के कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र में इस तरह की तकनीकें अपनाई जायें।

(9) राजकोषीय नीति को अनुप्रयुक्त करके आय व धन की असमानता को कम किया जा सकता है। प्रदर्शन उपयोग पर आरोही कर लगाये जायें तथा अनार्जित आय के अधिकांश भाग को राजकोष में ले जाया जाये। लेकिन यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि गरीब वर्ग पर अप्रत्यक्ष करों का बोझ अधिक नहीं होना चाहिए। काला धन निकलवाने और कर वंचन रोकने के लिए कठोर उपाये किए जायें। सार्वजनिक व्यय ऐसी दिशाओं में निर्दिष्ट हो कि समाज में निम्न मध्य एवं दरिद्र वर्गों की वास्तविक आय सामाजिक सुरक्षा प्रदान करके बढ़ाई जाये। परिसम्पति असमानता पर प्रहार करने हेतु पिछड़े क्षेत्रों में कृषि एवं औद्योगिक विकास बढ़ाना भी महत्वपूर्ण समझा जाने लगा है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि द्वितीय योजना के बाद भारत में सामाजिक न्याय के उद्देश्यों जैसे गरीबी उन्मूलन, बेरोजगारी दूर करना आय व धन की असमानता को कम करना, कमजोर वर्ग, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के कल्याण करने तथा अन्य सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने हेतु अनेक उपायों को काम में लाया गया किन्तु विभिन्न तथ्य व आंकड़े यह बताते हैं कि सामाजिक न्याय की उपलब्धि में अब तक हम सफल नहीं हो पाये हैं। सामाजिक व आर्थिक—दोनों छोरों पर वृहत रणनीति अपनाकर ही इस दिशा से सफलता प्राप्त किया जाना ही हमारा अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए।

आयोजना अधिकारी
बैंक आफ बड़ौदा
राजस्थान अंचल, जयपुर

सामाजिक न्याय: यथार्थ और कल्पना

धर्मेन्द्र त्यागी

भारतीय समाज की जहां कई अच्छी बातें बताई जा सकती हैं तो वहीं इसमें व्याप्त बुराइयों की भी कमी नहीं रही है। वर्ग-व्यवस्था के अंतर्गत तथाकथित निम्न जातियों के साथ किया जाने वाला भेदभाव भी हमारे समाज की कड़वी सच्चाई है। इसे दूर करने के लिए समय-समय पर विचारकों और समाज सुधारकों ने प्रयास किये हैं लेकिन यह विषवृक्ष हमेशा फलता-फूलता रहा है। आधुनिक युग में बाबा साहेब डाक्टर भीमराव आम्बेडकर ने इस दिशा में जो कार्य किया वह क्रांतिकारी प्रयास कहा जा सकता है। वे स्वयं एक ऐसी जाति में जन्मे थे जिसे समाज में निम्न माना जाता है। उन्होंने सामाजिक भेदभाव की पीड़ा को खुद झेला था इसलिए वह इसे समाप्त करने की आवश्यकता पूरी तरह समझते थे। इस लेख में डा. आम्बेडकर का संक्षिप्त परिचय देते हुए लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि जाति प्रथा, धार्मिक कट्टरपन तथा वर्ग-भेद हमारी राष्ट्रीय एकता के सबसे बड़े शत्रु हैं जिनसे लड़ना जरूरी है।

सृष्टि के प्रथम मानव के जन्म के बाद समाज और समुदाय अस्तित्व में आते गए। सभ्यता का विकास क्रम शुरू हुआ और इसी विकास क्रम के साथ मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की व्यवस्था फलती-फूलती रही। मानवीय तत्वों और संवेदना को रौंदे जाने की निरंतरता के दौर में लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध ने लोगों के अंदर मन परिवर्तन का भाव जगाया। बौद्ध साहित्य से यह तथ्य स्पष्ट है।

एक बार की बात है कि भगवान बुद्ध के महान अनुयायी आनंद, धर्म-प्रचार में निकले थे। रास्ते में उनको बहुत तीव्र प्यास लगी। प्यास से बेचैन धर्म-प्रचारक आनंद नजदीक के एक कुएं पर गए, वहां एक अछूत कन्या कुएं से पानी भर रही थी। आनंद ने अपने भिक्षा पात्र को आगे बढ़ाया और पानी मांगा, लड़की 'छोटी जात' की थी, तत्काल बोली—"महाराज! मैं एक अछूत कन्या हूं। आपको पानी कैसे दे सकती हूं?" तब

आनंद बोले—"कन्या! मैं पानी मांग रहा हूं। तुम्हारी जाति नहीं पूछ रहा हूं।" अछूत कन्या भिक्षु आनंद को देखती रह गई। उसने भिक्षु के भिक्षा पात्र में आवश्यकता अनुसार पानी डाल दिया। आनंद ने पानी पीकर प्यास को शांत किया और लौट पड़े।

वह कन्या आनंद के इस व्यवहार से इस सीमा तक प्रभावित हुई कि कुएं से ही आनंद के पीछे हो ली। वह उस स्थान पर गई जहां तथागत भगवान बुद्ध रह रहे थे। भगवान बुद्ध ने उस कन्या को बहुत समझाया कि वह अपने गृहस्थ जीवन में लौट जाए लेकिन कन्या पर ऐसी किसी बात का कोई असर नहीं हुआ और वह भी मानव-कल्याण और समानता का पाठ समाज में फैलाने के लिए भिक्षुणी हो गई। यह एक सत्य घटना है। बौद्ध साहित्य में इस घटना को पढ़ा जा सकता है और समझा जा सकता है कि तत्कालीन समाज में जाति, धर्म, वर्ग आदि के आधार पर सामाजिक व्यवस्था कितनी जटिलतम थी।

अभी भी देश की परिस्थितियों एवं जातिवाद में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है। जैसाकि हाल में कई ऐसी घटनाएं घटी हैं जो हमें पुरानी यादें दिला देती हैं। ढाई हजार वर्षों के अंतराल की इन घटनाओं से क्या स्पष्ट नहीं है कि सभ्यता के विकास के बावजूद हमारी सामाजिक व्यवस्था की नींव लगभग वैसी ही है? सामाजिक व्यवस्था की इस नींव पर जो मकान खड़े हैं अथवा खड़े किए जा रहे हैं, उनमें कितनी एकरूपता है?

अस्पृश्यता अथवा छुआछूत को मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा कलंक कहना किंचित गलत नहीं हो सकता और समाज व समुदाय को इस कलंक से मुक्ति दिलाने के प्रयास भगवान बुद्ध के समय (500 ई. पू.) से लगातार हो रहे हैं। किन्तु इस कलंक का आकार प्रकार बढ़ता ही जा रहा है। इस रोग से सामाजिक व्यवस्था को मुक्त करने के लिए रामानन्द, चैतन्य महाप्रभु, कबीर, एकनाथ आदि अनेक संतों ने, वैचारिक और आध्यात्मिक चेतना से लोगों को जागरूक बनाने के अपने धर्म का भली-भांति निर्वाह किया, लेकिन यह 'जड़ सामाजिक व्यवस्था' आज तक समाप्त नहीं हो सकी है। इस जड़ सामाजिक व्यवस्था का सर्वाधिक उत्तरदायी भी सभी वर्गों के लोग ही हैं। अस्पृश्यता वस्तुतः जातिवाद का ही कड़वा फल है, यह कोई अलग प्रथा नहीं है।

मध्यकालीन भारत के शासन काल में भी शूद्रों और अछूतों के शिक्षा, समानता और स्वतंत्रता के मानवी अधिकार प्राप्त नहीं थे। दरबारों में भी उनका कोई स्थान प्राप्त नहीं था। ब्रिटिश शासन काल में भी अछूत एक गंभीर समस्या बने रहे। लेकिन इस दौर में समाज पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव केवल राजनैतिक क्षेत्रों में ही सिमटा न रहा। भारतीय समाज व्यवस्था लोकतंत्र के सिद्धांतों के सर्वथा प्रतिकूल थी अतः इसकी धज्जियां उड़नी शुरू हो गईं और स्वाधीनता के स्वरों के साथ ही अछूतोद्धार के स्वर भी ऊंचे होने लगे। समाज सुधारकों ने आवाज उठाई कि जाति प्रथा की अलोकतांत्रिक भावना का लोकतंत्र में कोई स्थान नहीं है। समाज सुधारकों का कहना था कि छोटी-बड़ी सभी जातियों के लोगों को कानून, शिक्षा, राजनीति और अन्य क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए। लेकिन ब्रिटिश शासन में ब्राह्मण और शूद्र न्याय की दृष्टि में बराबर का दर्जा नहीं रखते थे, हालांकि मध्यकालीन और उससे पहले के भारत के मुकाबले शूद्रों में, समाज सुधारकों और समाज-शुभ-चिंतकों के निरंतर हस्तक्षेप के कारण मानवीय चेतना तथा जागृति फैलने लगी थी अर्थात सामाजिक परिवर्तन का सूत्रपात हो चुका था। इस काल में जो सामाजिक तथा धार्मिक आंदोलन शुरू हुए उनमें अस्पृश्यता निवारण भी एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम रहा है।

सुधारवादी आंदोलनों में सबसे बड़ा आंदोलन था—ब्रह्म समाज। राजा राममोहन राय (1772-1833), देवेन्द्रनाथ ठाकुर (1817-1905) और केशवचंद्र सेन (1838-1884) ब्रह्म समाज के नेता थे जिन्हें एकेश्वरवाद, आध्यात्मिक बुद्धिवाद और उपनिषदों के अद्वैतवाद का सम्मिश्रण कहा जा सकता है। इस प्रकार मानव और मानव के बीच भाई-चारे की भावना की प्रेरणा हुई। स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की नींव डाली जो प्राचीन वैदिक संस्कृति के उद्धार से उत्प्रेरित तथा जन्म के आधार पर जाति निर्धारण के विरुद्ध था। रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसायटी की सेवाएं भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। हिन्दू समाज के व्यवहार में सुधार के लिए इन सभी ने अपने-अपने तरीके से महत्वपूर्ण योगदान किया। जाति प्रथा और छुआछूत के साथ ही बाल-विवाह, विधवा-विवाह और महिलाओं के उद्धार की समस्याओं को इस अवधि में आवश्यक स्वर मिले। एक कटु विवाद भी छिड़ गया कि सामाजिक सुधारों को राजनैतिक सुधारों से अधिक प्रमुख स्थान दिया जाए।

रानडे, आगरकर और डा. भंडारकर ने समस्त सुधार को प्राथमिकता देने की बात कही जबकि बाल गंगाधर तिलक ने राजनैतिक सुधारों को प्राथमिकता दिए जाने का पक्ष लिया। उधर लार्ड मैकाले ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी हलचल पैदा कर दी। इससे भारत में बौद्धिक और राजनैतिक जीवन के नए तत्वों का सूत्रपात हुआ। भंडारकर, एम.जी. रानडे, चिपलूणकर, तिलक, आगरकर, गोखले, टैगोर, अरविंद, विवेकानंद, जे.सी. बोस, प्रफुल्ल चन्द्र राय, विजय राघवाचार्य,

पंतुल, रंगैया नायडू, जी. सुब्रह्मण्यम् अय्यर, हंसराज, श्रद्धानंद और लाला लाजपतराय आदि ने देश में सामाजिक और आर्थिक सुधारों का अलख जगाया। महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फुले ने सामाजिक समानता का आंदोलन चलाया। कहा जा सकता है कि 1873 में सत्य शोधक समाज की स्थापना करने वाले महात्मा फुले ने जाति प्रथा के विरुद्ध जो विद्रोह किया, उसी के परिणामस्वरूप जन-मानस में आत्म-विश्वास का संचार हुआ। दलित जातियों में राजनैतिक चेतना का उदय हुआ और उन्हें बुनियादी अधिकारों का अहसास हुआ। 1920 में महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय कार्यक्रमों में अस्पृश्यता निवारण को सर्वोच्च स्थान देने की घोषणा की और कहा कि इस कलंक को धोए बिना स्वराज्य बेकार है।

लेकिन भीमराव आम्बेडकर इस गांधी-दर्शन के प्रभाव में नहीं आए। उन्होंने कहा—"गांधीवाद धनिकों का दर्शन है और खाली बैठों का काम है। इसमें लोगों को यह बहकाने का प्रयत्न किया गया है कि वे अपनी मुसीबतों को करनी का फल या भाग्यचक्र मान लें। गांधीवाद में गंदगी-सफाई का काम सर्वोच्च समाज सेवा बताया गया है। परन्तु इसके बावजूद यह मुसीबत जान-बूझकर एक ही जाति के मत्थे मढ़ी जा रही है।"

महार जाति में जन्मे भीमराव आम्बेडकर को दलितों-शूद्रों का मसीहा कहा जाता है। तो आइए एक दृष्टि उनके जीवन पर भी डालें।

हिन्दू समाज के अछूत समुदाय में महार जाति एक ऐसी जाति है जो शक्तिशाली, समझदार, लड़ाकू और बहादुर कही जा सकती है। यह भी कहा जाता है कि महार ही महाराष्ट्र के मूल निवासी हैं और महाराष्ट्र महार+राष्ट्र से ही बना है। भारत में यूरोपियन सर्वप्रथम महारों के ही संपर्क में आए। तब सेना में महारों को प्रमुखता के साथ भर्ती किया जाता था। लेकिन 1892 ई. में सेना में महारों की भर्ती बंद कर दी गई। डा. आम्बेडकर के पिता रामजी ने इस अन्याय का विरोध किया। उन्होंने एम.जी. रानडे से संपर्क स्थापित करके बंबई के गवर्नर से भेंट की। फलस्वरूप 6 फरवरी 1917 को वह आदेश रद्द कर दिया गया, जिसके अनुसार सेना में अछूतों की भर्ती बंद कर दी गई थी। भीमराव आम्बेडकर इन्हीं रामजी आम्बेडकर के सबसे छोटे (14वें) पुत्र थे, जो 14 अप्रैल, 1891 को मध्य भारत के महू शहर में जन्मे थे। उस समय रामजी आम्बेडकर भारतीय सेना में सूबेदार मेजर थे। इसी वर्ष उन्होंने सेना में अपना कार्यकाल पूरा कर अवकाश ग्रहण किया। अवकाश प्राप्ति के बाद वे रत्नागिरी में लोक निर्माण विभाग में स्टोरकीपर हो गए। फिर तबादले पर सतारा (महाराष्ट्र) आ गए। यहां उन्होंने अपने पुत्र भीमराव को प्राथमिक शिक्षा दिलायी।

छूआछूत के प्रहार कितने हृदय-बेधक हैं, कितने बेरहम हैं, यह अहसास भीमराव को छात्र जीवन में ही हो गया था। इस भयंकर अमानवीय प्रथा के तमाम अनुभव उन्हें हुए। सन् 1904 में बंबई के सरकारी एलिफिंस्टन हाई स्कूल में भीमराव ने दाखिला लिया। लेकिन छुआछूत के कांटे यहां भी उन्हें चुभते रहे। आम्बेडकर ने 1907 में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। अछूत जाति के किसी विद्यार्थी द्वारा मैट्रिक पास करना उन दिनों बड़ी नहीं, बहुत बड़ी बात थी। इस दौरान एक समारोह में के. ए. केलुस्कर ने आम्बेडकर को गौतम बुद्ध की एक जीवनी भेंट की। इस पुस्तक का गहरा प्रभाव आम्बेडकर पर पड़ा। उन्होंने विदेश जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त की। ज्ञानोपार्जन की गजब की पिपासा थी आम्बेडकर में। श्रीपाद बाबाजी ठाकुर, वी. एन. मंडलीक, न्यायाधीश के. टी. तेलंग, एम. आर. जयकर और पंडित जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तिगत पुस्तकालयों की भांति डा. भीमराव आम्बेडकर का व्यक्तिगत पुस्तकालय भी बेहद समृद्ध था। वे कहा करते थे—"मेरे जैसे व्यक्ति के लिए, जिसका समाज में कोई स्थान नहीं, ये पुस्तकें ही अपने मन तक पहुंचाती हैं।" इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, कानून और संविधान जैसे गंभीर और गुरुतर विषयों पर उनकी पकड़ गजब की थी। अपने इन्हीं गुणों के बल पर वे भारतीय संविधान सभा के सदस्य और फिर अध्यक्ष बने।

डा. आम्बेडकर ने दलितों-अछूतों में आत्म विश्वास का संचार अपने चिंतन के माध्यम से किया। उनका कहना था कि हिन्दू समाज में अछूतों को कभी न्याय नहीं मिल सकता। इस कथन से असहमत हुआ जा सकता है लेकिन इसमें छुपे दर्द का अहसास सहन ही किया जा सकता है। अस्तु! अछूतोद्धार का कार्य सहज नहीं था। गांधीजी का मानना था कि "अस्पृश्यता वर्ग व्यवस्था की देन नहीं है बल्कि ऊंच-नीच की भावना है जो हिन्दू धर्म में फैल गई है।" संभवतः ऐसे ही आग्रहों के चलते डा. आम्बेडकर को कुछ कठोर निर्णय लेने पर बाध्य होना पड़ा।

क्रिया से प्रतिक्रिया का जन्म होता है। आम्बेडकर के हिन्दू-धर्म त्याग की घोषणा (क्रिया) के फलस्वरूप प्रतिक्रियाएं हुई और प्रतिक्रिया एक ऐसा आवेग है जो सहज ही रुकता नहीं। जहां तक धर्म-परिवर्तन से अछूतोद्धार होने की बात है तो कहा जा सकता है कि वह कड़वी गोली भी बहुत असरदार सिद्ध नहीं हुई। धर्म परिवर्तन के बाद भी वह समानता और स्वतंत्रता कितने अछूतों को मिल सकी जिसके वे हकदार थे? इसका एक बड़ा दुष्प्रभाव अवश्य हुआ है कि देश के लोगों में राष्ट्रीय चरित्र निर्माण का आवश्यक मोह उत्पन्न ही नहीं हुआ?

आम्बेडकर भी यह जानते थे कि धर्म परिवर्तन के जरिए रातों-रात किसी कल्पित स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती और इसीलिए उनका यह सोचना भी किंचित गलत नहीं था कि यदि अछूतों ने अन्य धर्म स्वीकार कर लिया तो उनकी राष्ट्रीय भावनाएं मर जाएंगी। यहां सोचना और समझना होगा कि धर्म क्या है? धर्म वस्तुतः आस्था, विश्वास और प्रेम का समन्वित स्वरूप है। आम्बेडकर ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली लेकिन इसके लिए भी अपने अंदर उन्हें एक लम्बा संघर्ष करना पड़ा। एक बौद्ध सम्मेलन में भाग भी लिया। 20 जून, 1940 को उन्होंने पीपुल्स एजूकेशन सोसायटी की ओर से सिद्धार्थ नाम से एक कालेज की स्थापना की। 1948 में उन्होंने एल. नरसू की पुस्तक "एसेंस आफ बुद्धिज्म" की प्रस्तावना लिखी। 1950 में आधुनिक बौद्धों की प्रथम शोक यात्रा में भाग लिया। समझा जाता है कि इसी अवसर पर उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने का फैसला लिया। दिसम्बर, 1954 को उन्होंने तीसरे अंतर्राष्ट्रीय बौद्ध संघ में भाग लिया। फिर 24 मई, 1956 को उन्होंने बुद्ध जयंती के अवसर पर घोषणा कि वे बौद्ध धर्म की दीक्षा लेंगे। इसके लिए 23 सितम्बर 1956 को उन्होंने एक प्रेस नोट जारी किया और घोषणानुसार 14 अक्तूबर 1956 को उन्होंने नागपुर में (दशहरे के दिन) बौद्ध धर्म की विधिवत दीक्षा ग्रहण की।

धर्म परिवर्तन काफी विवादास्पद मुद्दा है। और कहा जा सकता है कि अछूतोद्धार का सही मार्ग कम-से-कम धर्म परिवर्तन तो नहीं ही है। साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि आम्बेडकर ने बौद्ध धर्म का चुनाव बहुत सोच-समझकर ही किया अर्थात जब उनकी आस्था, विश्वास और प्रेम बौद्ध धर्म से एकाकार हो गए तभी उन्होंने यह कठोर कदम उठाया। लेकिन जातिवाद का कड़वा फल इस परिवर्तन-प्रक्रिया से गुजरकर भी क्या किंचित मीठा हो सका है?

स्पष्ट है कि आग से आग को नहीं बुझाया जा सकता। देश के संविधान में अछूतों और पिछड़ी जातियों को बराबरी का दर्जा दिलाए जाने के लिए पर्याप्त व्यवस्था की गई। लेकिन आरक्षण की इस व्यवस्था से भी अस्पृश्यता की विष बेल को अभी तक पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सका है। सामाजिक समानता की स्थिति भी अभी नहीं बन पायी है। हजारों वर्षों से शोषण-उत्पीड़न की चक्की में पिसते आ रहे दलित वर्गों की स्थिति आज भी बदतर है। इसका एक कारण यह भी है कि आरक्षण का लाभ प्राप्त करके पिछड़ी जाति के जो लोग ऊपर उठे हैं उन्होंने भी अपने परिवेश को, अपने आस-पास को शोषण मुक्त करने कराने में अपनी जिम्मेवारी का निर्वाह पूरी ईमानदारी के साथ नहीं किया है। दरअसल मनुष्य दूसरे द्वारा अपने पर किए गए अत्याचार को तो नापसंद करता है लेकिन शक्ति प्राप्त होते ही दूसरे पर अत्याचार करने में संकोच नहीं करता। वह भूल जाता है कि शक्ति बिजली की तरह चंचल वस्तु है। वह स्थायी रूप से किसी के पास नहीं ठहरती और शक्ति का एक गुण (या अवगुण) यह भी है कि वह जिसके हाथ में रहती है उसे ही कलंकित करती है।

हकीकत यह है कि सामाजिक बराबरी के लिए आर्थिक बराबरी अत्यावश्यक है। 15 अगस्त 1947 को देश ने राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त की लेकिन आर्थिक स्वाधीनता देशवासियों को आज तक प्राप्त नहीं हो सकी है। इसके लिए अभी बहुत प्रयास करने होंगे। सामाजिक न्याय की सही तसवीर भी तभी बन सकेगी जब आर्थिक मोर्चे पर गैर बराबरी का अंत हो सकेगा। अंतर स्वीकार्य हो सकता है किन्तु यह तो कोई बात न हुई कि एक व्यक्ति को दो वक्त की रोटी भी नसीब न हो और दूसरा व्यक्ति इस कदर संपन्न हो कि उसके गोदामों में अनाज सड़ रहा हो और अलमारियों में नोटों की गड्डियां और सोने-चांदी के जेवरात भूसे की तरह ठूंसे हुए हों?

जाति-प्रथा, धार्मिक कट्टरता और वर्ग विभाजन राष्ट्रीय एकता व अखंडता के तीन भयानक शत्रु हैं। वर्ग-विभाजन पर डा. आम्बेडकर की टिप्पणी दृष्टव्य है—वर्ग विभाजन के फलस्वरूप विशेषाधिकार प्राप्त जातियां बन गई हैं जिनमें असामाजिक भावनाएं पैदा होती हैं। क्या इस यथार्थ को नकारा जा सकता है? आम्बेडकर का सुझाव था कि सरकार द्वारा सामूहिक खेती और उद्योगों के सरकारी स्वामित्व की व्यवस्था की जाए। जब एक अवसर पर श्रीपाद अमृत डांगे ने उनसे पूछा—"सब को देने के लिए जमीन है कहां?" आम्बेडकर बोले—"मैं सोवियत प्रणाली को पसंद करता हूं। कृषि का सामूहिकीकरण किया जाना ही हमारी समस्याओं का समाधान है।"

इसमें दो राय नहीं हो सकती कि जातिगत भावनाओं से आर्थिक विकास अवरुद्ध होता है। इससे वे स्थितियां पैदा होती हैं जो कृषि तथा अन्य क्षेत्रों में सामूहिक प्रयत्नों के विरुद्ध हैं। तो आइए, आर्थिक लोकतंत्र की प्राप्ति के लिए हम सब मिल-जुलकर प्रयास करें। तभी हम जातिवाद, धार्मिक कट्टरता और वर्ग-विभाजन जैसी राष्ट्रघाती, आत्मघाती, समस्याओं का समाधान खोज सकेंगे तथा यथार्थ और कल्पना के अंतर को आवश्यकतानुरूप कम कर सकेंगे।

टाइप-वो, बी-26/368
डी.एम.एस. कालोनी, हरिनगर
घंटाघर, नई दिल्ली-110064

सामाजिक न्याय—कुछ विचारणीय मुद्दे

डा. सी. एम. चौधरी

हमारे संविधान में देश के सभी नागरिकों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए स्पष्ट रूप से व्यवस्था की गयी है। संविधान की प्रस्तावना के साथ-साथ इसके कई अनुच्छेदों में स्पष्ट रूप से यह बताया गया है कि समता मूलक समाज की स्थापना के लिए राज्य को क्या करना होगा। इन दिशा निर्देशों के आधार पर समय-समय पर ऐसे अनेक कार्यक्रम चलाए गए हैं जिनसे समाज में व्याप्त असमानता दूर हो और जो लोग प्रगति की दौड़ में पिछड़ रहे हैं उन्हें विकास की मुख्य धारा में लाया जा सके। लेखक का मानना है कि केवल कार्यक्रम बना देने से समाज में व्याप्त असमानता दूर नहीं हो सकती। ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि इन्हें दृढ़ निश्चय के साथ कारगर ढंग से लागू किया जाए।

भारत में सामाजिक न्याय—यथार्थ एवं कल्पना से सम्बन्धित विषय के गहन अध्ययन के लिए हमें अपने संविधान की प्रस्तावना को जानना आवश्यक है। डा. भीमराव आम्बेडकर भारतीय संविधान के निर्माता तथा सामाजिक न्याय के पक्षधर रहे हैं। भारत के संविधान के प्रारम्भ में प्रस्तावना के रूप में निम्नलिखित वाक्य लिखें गये हैं।

"हम भारत के नागरिक.... भारत के समस्त नागरिकों के लिए, न्याय-सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक....इस संविधान को अंगीकृत तथा आत्मार्पित करते हैं।"

हमारे संविधान को लागू किये हुए चार दशक से भी अधिक समय हो गया है तथा संविधान में दिये गये प्रावधानों को व्यवहार में भी लागू किया गया है। किस सीमा तक जाति, धर्म एवं वर्ग के आधार पर सामाजिक न्याय मिल सका है और अब भी कौन-से ऐसे मुद्दे हैं जिन पर पुनः विचार कर इस सामाजिक न्याय के उद्देश्य को पूरा करने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके अन्तर्गत निम्न बिन्दुओं का समावेश किया जा सकता है:

1. सामाजिक अधिनियम—भारतीय संविधान में संवैधानिक रक्षा प्रदान करने के लिए अनेक सामाजिक

अधिनियम बनाये गये हैं जिनके अंतर्गत सामाजिक न्याय प्रदान करने के प्रावधान हैं। इसमें निम्न नियम रखे गये हैं:

(i) अनुच्छेद 15 के अंतर्गत राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा। जनता के उपयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघरों सड़कों तथा सार्वजनिक समागम स्थानों के उपभोग पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं होगा।

(ii) अनुच्छेद 16 के अंतर्गत राज्याधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के संबंध में समस्त नागरिकों को समान अवसर प्रदान किये जायेंगे।

(iii) अनुच्छेद 16 में अस्पृश्यता का अन्त किया गया है और इसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया गया है। इसके लिए अस्पृश्यता (निवारण) अधिनियम, 1955 लागू किया गया है जिसके अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्थान में प्रवेश करने, नदी, तालाब आदि में नहाने, किसी भी दुकान, जलपान गृह, होटल या सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश करने, सार्वजनिक चिकित्सालय, औषधालय, शिक्षा संस्थान या छात्रावास में प्रवेश करने की स्वतंत्रता दी गई है।

(iv) अनुच्छेद 29 के अंतर्गत मूलवंश, जाति, भाषा आदि के आधार पर राज्य द्वारा सहायता प्राप्त किसी शिक्षण संस्था में प्रवेश प्राप्त करने की पाबंदी नहीं होगी।

(v) अनुच्छेद 46 में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा तथा उनके आर्थिक हितों का विशेष सावधानी से ध्यान रखने का प्रावधान है। सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करने का प्रावधान भी किया गया है।

(vi) अनुच्छेद 330, 332 तथा 334 के अंतर्गत संसद तथा राज्य विधान मंडलों में विशेष प्रतिनिधित्व की सुविधा प्रदान की गई है।

(vii) अनुच्छेद 164 के अंतर्गत राज्य तथा केंद्र में अनुसूचित जाति तथा जनजाति के सदस्यों के कल्याण एवं सुरक्षा हेतु एक विशेष अधिकारी नियुक्त करने का प्रावधान रखा गया है।

व्यावहारिकता

भारतीय संविधान में सामाजिक अधिकारों की रक्षा के लिए उपर्युक्त अनुच्छेदों का प्रावधान है। इन अनुच्छेदों की व्यवहारिकता पर विचार करने से स्पष्ट होगा कि वास्तव में इन प्रावधानों को मूर्त रूप दिया गया है। इससे यह भी पता चल सकेगा कि समाजवादी समाज की स्थापना करने में हमें सफलता प्राप्त हुई है अथवा इससे जातिवाद, वर्गवाद, शोषण तथा असमानता को प्रोत्साहन मिला है।

(i) साधारण जनता के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघरों का उपयोग अधिकांशतः समाज में उच्च वर्ग के लोगों द्वारा ही किया जाता है जबकि निर्धन वर्ग एवं पिछड़ी जातियों के लोगों को इनसे लाभ नहीं पहुंच पाया है। प्रशासन भी इन वर्गों की उपेक्षा कर रहा है।

(ii) राज्याधीन नौकरियों या पदों में समान अवसर देने का प्रावधान रखा गया है लेकिन निजी क्षेत्र में आज भी उच्च वर्ग के लोगों को जाति, पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा धर्म आदि के आधार पर ही लिया जाता है। सरकारी नौकरियों में भी योग्य अभ्यार्थी न होने के आधार पर पद नहीं भरे जाते हैं जिसकी यथार्थता पिछले वर्ष से विभिन्न विभागों में खाली पड़े अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लिए विज्ञापन निकालने से स्पष्ट है।

(iii) अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 से ही लागू है लेकिन फिर भी शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में इस अधिनियम का उल्लंघन किया जा रहा है।

(iv) ग्रामीण एवं छोटे कस्बों में जलपान गृहों तथा होटलों में प्रवेश, नाई से बाल कटवाने आदि भी ऐसे उदाहरण हैं जहां समाज के प्रत्येक व्यक्ति को पूर्णतया स्वतंत्रता की कल्पना करना आज भी व्यावहारिकता से परे है।

(v) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के सदस्य भी आपस में गलाघोंट प्रतिस्पर्धा करके एक-दूसरे को नीचा दिखाने, शोषण करने, मुकदमेबाजी तथा अस्पृश्यता को बढ़ावा देते हैं। प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कराने वाली सरकारी तथा अन्य संस्थाओं में भी आपस में एक-दूसरे से भेद, अस्पृश्यता तथा ऊंच-नीच का प्रदर्शन किया जाता है। इस स्थिति में अनेक बार इनके छात्रावासों में लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं। सवर्ण जाति वाले क्षेत्र में असवर्ण जाति के अधिकारी की नियुक्ति को पसंद नहीं किया जाता है।

(vi) आरक्षण नीति संवैधानिक प्रावधान है और इसे जारी रखा जाना अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण में वृद्धि करने एवं उनको सुरक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक है। लेकिन इस आरक्षण नीति ने भी

सामाजिक विषमता तथा अन्याय को बढ़ावा दिया है। आरक्षण का लाभ अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के सभी सदस्यों तक नहीं पहुंचा है। इन दोनों ही प्रकार की जातियों में सामाजिक असामनता एवं असंतुलन उत्पन्न हो गया है। एक वर्ग ऐसा है जिसकी स्थिति आजादी से पूर्व जैसी ही है तथा दूसरा वर्ग ऐसा है जो निरंतर इस नीति से लाभ प्राप्त करता हुआ आगे बढ़ रहा है। यह वर्ग अपने जाति बन्धुओं से दूर हटता जा रहा है, यहां तक कि उसमें श्रेष्ठता की भावना उत्पन्न होने लगी है। अत: सरकार को आरक्षण नीति को जारी रखते हुए इसमें आवश्यक संशोधन करना चाहिए जिससे कि जिन अनुसूचित जाति तथा जनजातियों को लाभ नहीं मिला है उन्हें भी लाभ मिल सके और इस संवैधानिक उपचार से अपनी सामाजिक समानता एवं स्वतंत्रता के लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के वे लोग जिन्हें आजादी के 43 वर्ष बाद भी कोई लाभ नहीं मिला है, उन्हें सुविधाएं अधिक देकर लाभान्वित किया जा सकेगा। इससे उन्हें स्वतंत्र भारत की सामाजिक न्याय एवं समानता की खुली हवा में सांस लेने का मौका मिल सकेगा।

(vii) सरकारी अधिनियम के अंतर्गत एक सीमा से अधिक भूमि का अधिग्रहण तथा उसका अनुसूचित जाति तथा जनजाति के सदस्यों में वितरण करने के लिए अनेक कदम उठाये गये हैं लेकिन जो भूमि आवंटित की गई है वह अच्छी श्रेणी की भूमि नहीं है। भूमि पर काश्त करने के लिए अन्य संसाधनों की पूर्ति सरकारी तंत्र द्वारा नहीं करवाई गई है। इसके साथ ही ऐसी भूमि से कई बार इन्हें बेदखल कर दिया जाता है तथा उन्हें मालिकाना हक दिलाने में प्रशासन सक्षम नहीं रहा है।

आर्थिक अधिनियम

भारतीय संविधान में सामाजिक समानता, न्याय एवं समाजवादी समाज की स्थापना के लिए सरकार ने समय-समय पर अनेक आर्थिक अधिनियमों का प्रावधान किया है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने, धन एवं आय की विषमताओं को दूर करने, निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम आदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए व्यूह रचना तैयार की गई है। इन कार्यक्रमों से अनुसूचित जाति तथा जनजाति के सदस्यों को अनुदान एवं सहायता देकर आर्थिक स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया गया है जिससे कि वे सब समाज के सामान्य व्यक्ति के रूप में अपना जीवन यापन कर सकें। निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत इनका विवरण प्रस्तुत किया गया है:

1. **निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम**-जुलाई 1975 में केन्द्र सरकार ने बीस सूत्री कार्यक्रम घोषित किया तथा अगस्त, 1986 में पुन: इनमें संशोधन किये गये। इनके अंतर्गत सभी लोगों को निर्धनता से छुटकारा दिलाने के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करने का प्रावधान रखा गया जिससे कि समाज में लोगों को लाभप्रद रोजगार प्राप्त हो तथा भवन, सड़कें, तालाब जैसी सामाजिक परिसम्पत्तियों का सृजन किया जा सके। हथकर्घा, दस्तकारी, ग्रामीण एवं छोटे उद्योगों को प्रोत्साहन दिया गया। स्वयं नियोजित कार्यकुशलता के सुधार के लिए प्रयास किये गये। इसमें निर्धन वर्ग के लोगों के लिए अनुदान तथा वित्तीय संसाधन जुटाए गये जिससे कि उनकी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति में सुधार किया जा सके।

2. भूमिहीनों को भूमि का वितरण का प्रावधान भी रखा गया तथा उन्हें मालिकाना अधिकार देने के लिए 'गांवों की ओर प्रशासन' जैसे कार्यक्रम शुरू किये गये।

3. **ग्रामीण श्रमिकों हेतु विशेष कार्यक्रम**-संशोधित बीस सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्र में श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए विशेष कार्यक्रम शुरू किये गये। इसके लिए कृषि एवं उद्योग में असंगठित श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी को प्रभावी बनाने का महत्वपूर्ण कदम उठाया गया। बंधुआ मजदूरी के उन्मूलन हेतु कानून को पूर्णतया लागू करने का प्रावधान रखा गया। स्वैच्छिक संस्थाओं से बंधक श्रमिकों के पुनर्वास के लिए सहयोग प्राप्त करने का कार्यक्रम भी हाथ में लिया गया।

4. जनसाधारण के लिए स्वच्छ पीने का पानी का प्रावधान रखा गया है और अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगों को ये सुविधाएं देने हेतु विशेष प्रावधान रखा गया।

5. **अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति को न्याय दिलाने का प्रावधान**-बीस सूत्री कार्यक्रम में इन दोनों वर्गों के लोगों को न्याय दिलाने की व्यवस्था की गई है। संवैधानिक प्रावधानों तथा इन वर्गों हेतु बने कानूनों को प्रभावी रूप से लागू करने, इन वर्गों को आबंटित भूमि का कब्जा दिलाने तथा शैक्षणिक स्तर में सुधार हेतु विशेष कार्यक्रमों के माध्यम से पुनर्वास आदि के लिए कदम उठाये गये हैं।

6. अनुसूचित जाति तथा जनजाति वर्ग के लोगों को सीमान्त एवं लघु कृषकों के रूप में मिलने वाले अनुदान तथा

वित्तीय सहायता की पूर्ति करके सामाजिक स्तर को उन्नत करने का कार्यक्रम, बिजली की आपूर्ति, आवास तथा कुओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है।

व्यावहारिकता

विभिन्न आर्थिक कार्यक्रमों के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक न्याय प्रदान करने का प्रावधान संवैधानिक प्रावधानों तथा कानूनों के माध्यम से किया गया है। फिर भी इस व्यावहारिकता में हमें निम्न दोष देखने को मिलते हैं:

1. निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम में जिन लागों का चयन किया गया है वह राजनीतिक आधार पर किया गया है जिससे सही व्यक्ति का चुनाव नहीं हो पाया है। इसके साथ ही वित्तीय सहायता देने वाली संस्थाओं तथा इससे लाभान्वित होने वालों के बीच मध्यस्थ पनपने लगे हैं जिससे प्रशासनिक भ्रष्टाचार बढ़ा है तथा शोषण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है। दूसरी ओर संसाधनों के वितरण पर अधिक जोर देने तथा उसके उपयोग की ओर कम ध्यान देने से उत्पादकता में इनका उपयोग नहीं हो सका है।

2. अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगों को आवंटित भूमि पर मालिकाना हक दे दिया गया है लेकिन कोई ऐसा स्थाई बंदोबस्त नहीं किया गया है जिससे कि उन्हें इस भूमि से बेदखल नहीं किया जा सके। इसके साथ ही इस भूमि पर काश्त करने हेतु सरकार द्वारा पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं कराये गये। इससे कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

3. ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी के लिए अधिनियम पारित करना एक बात है तथा उसे व्यावहारिक रूप से लागू करना दूसरी बात है। इसकें लिए कुशल एवं ईमानदार प्रशासनिक तंत्र होना आवश्यक है तथा जन सहयोग भी आवश्यक है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में हमें बंधक श्रमिक देखने को मिलते हैं लेकिन उनकी समस्या का स्थाई समाधान नहीं होने के कारण शोषित वर्ग अपनी आवाज उठाने में असमर्थ है।

4. अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, सेवा पूर्व तैयारी तथा भूमि आवंटन एवं इसके कब्जे संबंधी कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू किया जाना चाहिए। इसके साथ ही पर्याप्त मात्रा में वित्तीय संसाधनों की पूर्ति केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा की जानी चाहिए। इन समस्त कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू किया जाये जिससे निर्धारित समय में सही परिणाम सामने आ सकें।

5. विभिन्न कार्यक्रमों के अंतर्गत निर्धन वर्गों को दिये जाने वाले अनुदान तथा वित्तीय साधन पर्याप्त मात्रा में दिये जायें। लाभान्वित होने वाले लोगों का चयन राजनीतिक आधार पर न होकर सामाजिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर किया जाये। संसाधनों के उपयोग पर भी प्रभावी पर्यवेक्षण किया जाये जिससे उत्पादक कार्यों में उनका उपयोग हो सके तथा स्थाई सम्पत्तियों का सृजन हो सके जिससे अधिकाधिक रोजगार के अवसर प्रदान करके सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाया जा सके।

निष्कर्ष

इस प्रकार भारतीय संविधान में दिये गये सामाजिक एवं आर्थिक संरक्षण के प्रावधानों तथा उन पर आधरित कानूनों को प्रभावी ढंग से लागू किया जाना चाहिए। यह तभी संभव है जब सत्ताधारी दल अपने दृढ़ निश्चय के साथ कुशल प्रशासन तंत्र के माध्यम से इन प्रावधानों को क्रियान्वित करें। संबंधित वर्ग सजग रहे तथा जन सहयोग भी पूर्णरूपेण इसके पक्ष में हो। निर्धनता, बेरोजगारी तथा अर्द्ध बेरोजगारी हटा कर सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं को दूर करना चाहिए तथा कठोर परिश्रम को मुद्रा एवं मशीन के स्थान पर प्राथमिकता देते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के दृष्टिकोण से विकासात्मक कार्यक्रम लागू किये जाने चाहिए। इससे एक ओर सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति संभव हो सकेगी तथा दूसरी ओर सामाजिक न्याय, सुरक्षा तथा रक्षा स्वतंत्रता की पूर्ति की जा सकेगी। इससे राष्ट्रीय एकता, भावात्मक एकता और सामाजिक एकता कायम रखी जा सकेगी। अनुसूचित जाति तथा जनजाति वर्ग के लोगों के लिए जो कुछ भी किया जा रहा है इसके बारे में डा. राधाकृष्णन ने लिखा है—"आज जो कुछ किया जा रहा है, वह न्याय का या दान का प्रश्न नहीं है, अपितु प्रायश्चित का प्रश्न है। जितना कुछ हमारे सामर्थ्य में है, वह सब भी जब हम कर चुकेंगे, तब भी, इस विषय में जितना हमारा पाप है, उसके एक अल्प अंश का भी प्रायश्चित न हो सकेगा।" अतः हमारे देश में समाजवादी समाज की स्थापना, सामाजिक न्याय, विषमता में कमी आदि के लक्ष्य को प्राप्त करने में देश के सभी नागरिकों की सामूहिक नैतिक जिम्मेदारी है चाहे वह राजनीतिज्ञ हो, प्रशासक हो, नीति निर्धारक हो, समाज सुधारक हो या धर्म शास्त्री हो।

1346, जयपथ,
बरकत नगर,
जयपुर-302015

आर्थिक और सामाजिक न्याय का तकाजा

बलवन्त सिंह हाड़ा

भारतवर्ष में सामाजिक असमानता न होती तो हमें शायद ऐसे महापुरुष भी न मिलते जिन्होंने हमें सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान की। समाज में आज जो बुराइयां हैं उनका कारण हमारा निजी स्वार्थ है। यह एक ऐसा अन्याय है जो हमने व्यक्तिगत रूप में अपने समाज से किया है। न्याय प्रणाली में आर्थिक दखलदांजी होना जहां सत्य को त्यागने की बात है वहां संवैधानिक अवहेलना भी है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को पूरी तरह सतर्क रहना होगा और कोई न कोई ऐसा समाधान निकालना होगा जो कोरे सुझावों पर आधारित न होकर जीवन में दाखिल हो सके।

पिछड़ी जाति के मसीहा और भारतीय संविधान के निर्माता बाबा साहेब डा. भीमराव आम्बेडकर को 14 अप्रैल, 1990 को मरणोपरांत भारत सरकार ने राष्ट्रपति भवन में 'भारत रत्न' राष्ट्र के सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार से सम्मानित किया। उनके एक विशाल चित्र का संसद के केन्द्रीय कक्ष में अनावरण भी किया गया। इस वर्ष को उनकी जन्म शताब्दी के रूप में मनाया जा रहा है। प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने इस वर्ष को सामाजिक न्याय वर्ष भी घोषित किया है साथ ही मानसून संसद अधिवेशन में अनेक पिछड़े वर्ग, विकलांग, महिला संरक्षण एवं काम के अधिकार जैसे विधेयक विचार हेतु प्रस्तुत किये गये। स्व. बी. पी. मंडल की अध्यक्षता में एक जनवरी 1979 को पिछड़ी जाति आयोग की स्थापना हुई थी जिसकी रिपोर्ट महत्वपूर्ण सिफारिशों सहित 12 दिसम्बर 1980 को भारत सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की जा चुकी थी। राष्ट्रीय सरकार ने अपने वायदे के अनुसार 7 अगस्त, 1990 (मंगलवार) को मंडल आयोग सिफारिशों के अनुसार केन्द्रीय और सार्वजनिक उपक्रमों की सेवाओं में पिछड़े वर्गों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा की है।

भारतीय समाज का उत्कर्ष, विरोध और परिवर्तन

समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है जिसकी एक अमूर्त अवधारणा है जो कि सामाजिक संरचनाओं की आधारशिला रखते हैं। जिस प्रकार शरीर की संरचना की निर्णायक इकाइयां हाथ, पैर, पेट, आंख, नाक, कान आदि हैं जिनके स्थान व कार्य निर्धारित हैं लेकिन शरीर का प्रत्येक अंग एक-दूसरे पर पूर्णत: आश्रित है। तभी शरीर सम्मिलित रूप से कार्य कर पाता है। यदि किसी अंग का पोषण बिगड़ जाये तो पूरे शरीर पर उसका कुप्रभाव पड़ता है।

भारतीय समाज के उत्कर्ष का इतिहास प्रागैतिहासिक युग से प्रारम्भ होता है जब आदिम मानव अपनी प्रारम्भिक अवस्था में

था। पाषाण और धातु के ज्ञान से कृषि पद्धति में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ। समूहों को आवास ज्ञान और वर्ग संगठन का बढ़ावा मिला। सर्वेक्षण में प्रागैतिहासिक सभ्यता के अवशेष भारत के विभिन्न हिस्सों में मिल चुके हैं। सिन्धु और इसकी सहायक नदी रावी के कांठे में ताम्रयुगीन नगर सभ्यता, जिसे मोहनजोदड़ो व हड़प्पा के नाम से जाना जाता है, एक प्रमाण है। आर्य एवं अनार्यों के संघर्ष के साथ जाति प्रथा का उदय होने लगा, इस प्रकार नगर और गांवों में सहस्त्रों जातियां उप-जातियां तथा अस्पृश्यों का विकास हुआ। अनार्यों को पराजित कर आर्यों ने उन्हें बंदी बना कर उनसे भृत्य का कार्य लिया। उन्हें चौथा वर्ग 'शूद्र' के रूप में गृहित कर लिया। ब्राह्मण देवता स्वरूप माना गया, उसे यज्ञ कार्य, पुरोहित कार्य वंशानुगत प्राप्त था। क्षत्रिय का वर्ग राजकुल से सम्बन्धित था। वह वर्ग युद्ध-कौशल और प्रशासनिक सैनिक योग्यता में अग्रणी था। वैश्य समाज को क्षत्रिय के बाद तीसरा वर्ग माना गया। वह पशुपालन, अन्य उत्पादन, व्यापार से जीविका चलाता था। शूद्र का स्थान चौथा था, इसका प्रधान कार्य परिचारिका वृत्ति था। यज्ञ से वंचित था, उसके द्वारा लाया गया दूध तक यज्ञ-पूजा के काम में नहीं लिया जाता था। उसे विद्या प्राप्ति का अधिकार नहीं था। ये नगर में अलग बस्ती बनाकर बाहर रहते व घूम-घूम कर ऐन्द्रजालिक कार्यों, भेरी वादन या खेल दिखाकर जीविका चलाते थे। इनकी प्राचीन काल से ही दयनीय अवस्था रही। चीनी यात्री फाश्येन लिखता है कि जब चांडाल बाजार में प्रवेश करता था तब वह लकड़ियां बजाता, मुंह से 'हट जाओ अन्नदाता' कहता चलता था। उसका स्पर्श व प्रातः दर्शन अशुभ माना जाता था।

सदियों से इस प्रकार अस्पृश्य व शूद्र समझी जाने वाली जातियां, उप-जातियां जंगल व गांवों में उच्च वर्ग के उत्पीड़न और शोषण सहती आ रही थीं। जब कि हमारी संस्कृति और सभी धर्मों में शोषण और उत्पीड़न को बुरा कहा है। ऋग्वेद में जोर देकर कहा है:—'एकैवमानुषी जाति' सभी मानवों की एक ही जाति है, सब एक ही हैं।

ऋग्वेद ने आदेश दिया है

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनासि जानताम्।
देव भाग यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।।

(दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा तुम अपने साथ चाहते हो, सभी प्राणवानों की तरफ मित्रता की दृष्टि से देखो, क्योंकि उन सभी में एक ही आत्मा निवास करती है, सब उसी वैश्विक आत्मा के अंग हैं। जो मानता है कि सभी मेरे आत्मीय हैं और सभी से समान प्रेम करता है उसे कभी अकेलापन महसूस नहीं होता है। ऐसे व्यक्ति के जो दिव्य गुण होते हैं, जैसे क्षमा, करुणा और सेवा, उनके कारण वह अपने सहयोगियों का प्रिय बन जाता है। वह अपने जीवन में निरंतर अद्भुत आनन्द की अनुभूति करता रहेगा।)

अथर्वेद के पृथ्वी सूक्त में है कि भिन्न-भिन्न धर्म, भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वालों को धारण करने वाली यह पृथ्वी सभी को शांति व कल्याण करे।

आगे सूक्त में कहा:

ता नः प्रजाः बहुतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि—महयम् (हे पृथ्वी माता, हम तुम्हारे बच्चे हैं, हमें यह क्षमता दो कि हम एक दूसरे के साथ सौहार्द्र से रह सकें, हम एक दूसरे के साथ मधुर बोली बोलें।)

गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने भारत के भव्य स्वप्न नामक लेख में लिखा है "मैं भारत से प्रेम करता हूं, इसलिए नहीं कि मैं उसके भूगोल की मूर्ति पूजा करता हूं, बल्कि इसलिए कि इस भूमि ने अपने महान सपूतों की प्रज्ञा से प्रस्फुटित सत्य ब्रह्म्, सभी जीवों की एकता ब्रह्म् में है, जैसे जीवन्त शब्दों को काल के परिवर्तनशील चक्र में से भी बचा रखा है।"

भारत के किसी दर्शन में जाति संस्था के समाजशास्त्रीय कारण नहीं पाये जाते हैं। संभव है कि वे कारण पैदा हुए हैं असुरक्षा की भावना से, जिससे हर जाति वालों ने अपना दायरा बना लिया, एक आवरण ओढ़ लिया था। समाज में अनेक वर्ग नए पैदा हो गये। राजा-महाराजा, जमींदार, धनिक व ब्रिटिश शासक गरीब व छोटे लोगों पर अनेक अत्याचार व शोषण करने लगे, स्त्रियों के साथ अनेक दुर्व्यवहार होने लगे। ऐसे समय भी अनेक समाज सुधारक सामने आये, सती प्रथा के लिए राजा राममोहन राय ने काफी काम किया, बाद में महामना मदनमोहन मालवीय, दयानन्द सरस्वती आदि आगे आये। स्वतंत्रता से पूर्व ही महात्मा गांधी, डा. भीमराव आम्बेडकर जैसे नेताओं ने पिछड़े वर्ग के हितों की रक्षा की मांग प्रारंभ कर दी थी। महात्मा गांधी ने 14 जनवरी 1948 को एक जन प्रार्थना सभा में इस प्रकार कहा—"भारत में न कोई कंगाल होगा, न भिखारी, न बड़ा, न छोटा, न अरबपति, न आधा पेट भोजन करने वाला कर्मचारी, न नशीले पेय, औरतों के प्रति मर्दों के मन में सम्मान होगा, अपनी पत्नी के अलावा हर स्त्री सभी धर्मों में अपनी उम्र के अनुसार मां, बहन या बेटी होगी, छुआछूत नहीं होगी व सभी धर्मों के प्रति समान आदर होगा।" गांधीजी की क्या ही सुनहरी कल्पना थी, वे स्वाधीन भारत में कुटीर उद्योगों की स्थापना करना चाहते थे, जिससे हर व्यक्ति रोजगार प्राप्त कर सके, वे अमीर-गरीब की खाई पाटना चाहते थे। नारी को

अत्यन्त सम्मानजनक स्थिति में पुरुष के समान बराबर का अधिकार मिले। इसके लिए वे नारी की आत्मा को चंद चांदी के टुकड़ों पर तोलने वाली शक्ति व दहेज रूपी दानव को समूल नष्ट करना चाहते थे।

भारतीय संविधान के दार्शनिक आधार

एक लम्बी अवधि के बाद अंग्रेजी शासन में हमें अनुभव हुआ कि हमने वर्ग, वर्ण, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, प्रान्त, भाषा आदि की अनेक दीवारें खड़ी कर ली हैं, हम गिर चुके हैं, हम बंट चुके हैं। हमें होश आया, हमने महात्मा गांधी, जवाहरलाल जैसे योग्य नेताओं के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए लड़ाई लड़ी। हमें इसमें सफलता मिली। 15 अगस्त, 1947 को हम राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र हुए। 26 जनवरी 1950 को हमारी नवीन समाज की संरचना संविधान के रूप में स्वीकार की गई। डा. आम्बेडकर को इसकी रचना का श्रेय है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में जनगण की जिन आकांक्षाओं और संकल्पों की अभिव्यक्ति हुई है, उसके सभी शीर्ष यथा न्याय, स्वतंत्रता, समता, बन्धुता, व्यक्ति की गरिमा, गूढ़ दार्शनिक भावों के वाहक हैं। इन सभी का केन्द्र 'न्याय' है जो स्वयं एक कूट दार्शनिक शब्द है। संविधान के तृतीय और चतुर्थ भागों में नागरिक अधिकारों, राज्य के दायित्व का समीकरण, विधिक और सांविधानिक दोनों दर्शनों का अवगाहन करता है। 42वें संविधान संशोधन (1976) के द्वारा तो 'समाजवाद' शब्द प्रस्तावना में सन्निविष्ट कर दिया गया है। अनुच्छेदों का बीज मंत्र सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, कल्याणकारी राज्य का उद्घोष कर, शिव से तादात्म्य करता है। यह शिवत्व और यह समाजवादी दर्शन, संविधान के अध्ययन, निर्वाचन और क्रियान्वयन का मानक है। कल्याणकारी राज्य में समता के साथ विकास इसी का परिणाम है।

सामाजिक न्याय संविधान के अनुसार

भारतीय संविधान में 'सामाजिक न्याय' प्रदान करने के लिए समुचित व्यवस्था की गई है। भारतीय समाज सामाजिक न्याय के लिए वचनबद्ध है, जिसे संविधान के माध्यम से दिलाने का प्रयास किया गया है। इसके तहत समस्त भारतीय नागरिकों को जाति, रंग, धर्म, लिंग, वर्ण, स्थान आदि का भेदभाव न करते हुए विकास के समान अवसर प्रदान किए जाएंगे। समस्त नागरिकों को समान स्तर पर लाने के लिए समान अवसर उपलब्ध कराकर सामाजिक न्याय दिलाने का प्रयत्न किया जाएगा। इसके तहत—

1. अनुच्छेद 15 के अनुसार प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के समान अवसर प्रदान होगा।
2. अनुच्छेद 338, 339 व 340 में दलित वर्गों को विशेष सुविधाएं प्रदान की गई हैं, ताकि वे अन्य वर्गों के समान सामाजिक स्थिति पर पहुंच सकें।
3. अनुच्छेद 39 में स्त्रियों तथा बालकों का श्रमिकों के रूप में दुरुपयोग न किया जा सके।
4. अनुच्छेद 23 में मानव क्रय-विक्रय, दास प्रथा, बेगार प्रथा का अंत करने का प्रावधान है।
5. अनुच्छेद 46 में अनुसूचित जातियों, जनजातियों को न्याय दिलाने, शोषण से सुरक्षा एवं आरक्षण का प्रावधान है।

इसी प्रकार संविधान में छुआछूत को अपराध माना गया। ''अस्पृश्यता गैर कानूनी है, असामाजिक है, दंडनीय है, अपराध है'' नीति निर्देशक तत्वों से भी सामाजिक न्याय की भावना प्रकट होती है। डा. आम्बेडकर ने संविधान निर्मात्री सभा में कहा था कि हमने राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना की है तो हमारी यह भी इच्छा है कि आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना भी करें तथा साथ ही सामाजिक न्याय की व्यवस्था को सुदृढ़ बनाएं। इसी दृष्टि से अनुकरणीय नीति निर्देशक तत्वों की व्यवस्था की गई। नीति निर्देशक तत्वों से हमारी सामाजिक न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप बहुत स्पष्ट होता है। ये नीति निर्देशक तत्व 42वें संशोधन से तो अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गए हैं।

वैयक्तिक एवं सामाजिक हितों का सामंजस्य

मूल अधिकारों के अतिरिक्त आर्थिक न्याय सामाजिक न्याय की आधारशिला है। आर्थिक न्याय के बिना सामाजिक न्याय की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आर्थिक न्याय सम्बन्धी उपयुक्त व्यवस्थाओं से यह स्पष्ट है कि वर्तमान भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की नींव बहुत ही गहरी रखी गई है। इन प्रावधानों के अंतर्गत कृषि भूमि की सीमा निर्धारण, शहरी सम्पत्ति निर्धारण, कमजोर वर्गों के आर्थिक हितों के उत्थान के लिए अनेकानेक कानूनी प्रयास, कृषि, पशुपालन की वैज्ञानिक प्रणाली, सामाजिक न्याय दिलाने की दिशा में ही प्रयास हैं।

सर्व धर्म सद्भाव पर आधारित समाज व्यवस्था

42वें संशोधन द्वारा 'धर्म निरपेक्ष' शब्द समाज के विशेषण के रूप में जोड़ दिया गया। धर्म निरपेक्षता का शाब्दिक अर्थ तो धर्म से कोई सम्बंध नहीं रहने से है। सर्व धर्म सद्भाव अर्थात्

राज्य की दृष्टि से सभी धर्म समान होंगे। किसी भी धर्म विशेष को राज्य प्रश्रय नहीं देगा। अनुच्छेद 25(1) में सभी व्यक्तियों को स्वतंत्रता तथा धर्म के अबाध रूप में मानने, आचरण करने का अधिकार शामिल है।

प्रारम्भिक योजनाओं द्वारा आर्थिक समता का प्रयास

नये स्वतंत्र देशों की तरह हमारे भारत में भी 'देशवासी के विकास' की अपेक्षा देश के विकास को अधिक महत्व दिया गया। पांचवी योजना (1974-79) 'देशवासी की प्रगति' के विशेष प्रयास 'गरीबी हटाओ' अभियान चलाये गये परन्तु आशानुरूप सफलता नहीं मिली। सातवीं योजना के प्रारम्भ में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बिताने वाले कुल जनसंख्या के 27 प्रतिशत लोग थे। उस समय प्रतिवर्ष 4800 रुपये से कम आय प्राप्त करने वाले परिवार निर्धनता की श्रेणी में आते थे। देशवासी के विकास के लिए दो बातें आवश्यक हैं। प्रथम प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि और द्वितीय कुल आय का निर्धन लोगों के पक्ष में वितरण व्यवस्था। आठवीं योजना के बारे में विचार विमर्श करते हुए योजना आयोग ने आधार पत्र तैयार करने वाली उप-समिति को इसे सामाजिक न्याय के साथ विकास अर्थात समता के साथ विकास की नीति को मद्देनजर रखते हुए निर्देशित किया है। जिसमें आय 6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है।

सामाजिक न्याय में बाधक तत्व

विकास का लाभ समाज में व्याप्त कुरीतियों के कारण जरूरत मंद लोगों को नहीं मिल पाता है। हमारा देश ग्राम बहुल है परन्तु योजनाओं का लाभ शहरों को मिलता है अथवा वे सैद्धांतिक मात्र होकर रह जाते हैं। छोटी-छोटी बातों के लिए गांवों में बड़े-बड़े भोज आयोजित कर धन व अनाज का अपव्यय कर देते हैं। कर्ज लेकर विवाह तथा मृत्यु भोज अवश्य करते हैं शिक्षा पर पूरा ध्यान नहीं है, महिला शिक्षा को तो नकारात्मक दृष्टिकोण से देखा जाता है। दूषित, कल्पित मान्यताएं थोप दी जाती हैं। गांवों में अंधविश्वास पूरी तरह व्याप्त है। गांवों में आज भी सागड़ी (बंधक श्रमिक प्रथा) मौजूद है। बाल विवाह तो बदस्तूर हो रहे हैं। दहेज में आज भी दास-दासियों को देने के प्रकरण सामने आते हैं। सवर्ण आज भी अछूत लोगों से द्वेष पालते हैं। गांव में किसी भी मौके का बहाना लेकर चौपाल जोड़ना, हुक्का चिलम पीना, शराब व अमल जैसी नशीली वस्तुओं का सेवन करते हैं। गांवों में जाति प्रथा का प्रभाव है, पंच समस्याओं का निराकरण करते हैं जो पूर्वाग्रहों से युक्त, तथ्यहीन सम्बंधों पर आधारित होते हैं। महिलाओं व बच्चों से खेतों पर भी काम लिया जाता है। उन्हें पूरी मजदूरी नहीं दी जाती है। पर्दा प्रथा के कारण महिलाओं को घर में अस्वस्थ घुटन में रहना पड़ता है। पति की मृत्यु नवविवाहिता के लिए अभिशाप होती है। गांव में अधिकांश लोग आपसी झगड़ों, गुटबाजी, मुकदमों में अर्थ, श्रम को खोते रहते हैं। कृषि उत्पादन बिजली व सिंचाई की उपलब्धि से बढ़ा है पर उसका लाभ किसान को नहीं मिल पा रहा है।

शहरी क्षेत्र की सामाजिक स्थिति

शहरी क्षेत्र में गरीब अमीर की खाई बहुत गहरी हो गई है, बड़े-बड़े कारखानों, उद्योगों में श्रमिक को पूरा वेतन नहीं मिलता, उनका भरपूर शोषण हो रहा है। महंगाई चरम सीमा पर होने से उनका जीवन स्तर गिरता जा रहा है। रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था नहीं है, लोग सड़क के किनारों, फुटपाथों, अनाथालयों में जीवन बिता रहे हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण शहर गंदी बस्तियों में परिणित हो रहे हैं। शिक्षा प्राप्त डिग्री/डिप्लोमाधारियों के झुंड रोजगार कार्यालयों का चक्कर लगाते रहते हैं।

इन उपरोक्त सभी बिन्दुओं का सम्बंध विशेष तौर से आर्थिक स्तर से जुड़ा है, यदि आदमी को पेट भर रोटी नहीं मिलेगी तो वह उत्पात तो करेगा ही। हमारी सरकार इस ओर जागरूक हो गई है, सामाजिक न्याय को प्रतिष्ठत करने को आरूढ़ है। 9 अगस्त को संसद में महिला राष्ट्रीय आयोग की स्थापना विधेयक सर्वसम्मति से पारित हो गया, इससे पूर्व मंडल आयोग को स्वीकृति मिल चुकी है। राष्ट्रीय सरकार के निर्माण के बाद प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने राष्ट्र के नाम संदेश में कहा था :

"आर्थिक और सामाजिक न्याय इतिहास का तकाजा है। गांवों में भारत रहता है। आज वहां से पूंजी भाग रही है, बुद्धि भाग रही है और श्रम शक्ति भाग रही है। जब तक ऐसा रहेगा भारत मां का मुंह पीला ही रहेगा....वे एक इंसान की, एक इज्जत की जिंदगी बिता सकें, यह हमारा प्रथम लक्ष्य होगा।"

राष्ट्रीय सरकार अपने संकल्प पर अग्रसर है, मानसून अधिवेशन में मंडल आयोग के अतिरिक्त महिला राष्ट्रीय आयोग जैसे विधेयक सर्वसम्मति से पारित हो चुके हैं और भी अनेक पिछड़े वर्ग के हितैषी बिल पारित होने की संभावना है। अब यह आशा व विश्वास पैदा करने की जरूरत है कि इन आयोगों का हितग्राहियों को पूरा लाभ मिले, बिचौलियों पर पूरा नियंत्रण रहे तो बापू की कल्पना, 'रामराज्य' सामाजिक न्याय के अनुरूप, साकार हो सकती है।

खाल की हवेली, झालावाड़
झालावाड़-326001 (राजस्थान)

समता एवं सामाजिक न्याय के मसीहा : डा. आम्बेडकर

आशा शर्मा

डा. आम्बेडकर भारत के उन महान सपूतों में से थे जिन्होंने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को नयी दिशा दी। उन्होंने इस आंदोलन को सामाजिक परिप्रेक्ष्य और सार्थक संदर्भ प्रदान किया। उनका सारा जीवन समानता और न्याय के लिए संघर्ष में बीता। हमारे देश के संविधान में समाजवादी लोकतंत्र की संकल्पना डा. आम्बेडकर के प्रयासों का परिणाम है। इस लेख में लेखक ने समता और सामाजिक न्याय के लिए डा. आम्बेडकर के प्रयत्नों की जानकारी दी है।

भारतीय इतिहास आदिकाल से ही महान मनीषियों व चिंतकों की थाती रहा है जिन्होंने अपने विशद् चिंतन से विश्व-दर्शन एवं समाज को ज्ञान-विज्ञान एवं कला-संस्कृति के नित नए आयाम दिए। प्रत्येक युग में मानव-मूल्यों की सुरक्षा एवं संवृद्धि में वे सदैव अग्रणी रहे हैं और समाज तथा राज दोनों के दुराग्रही, दंभ व कुरीतियों के प्रखर विरोधी भी। महात्मा बुद्ध, कबीर, तुलसी, गुरुनानक, राजाराम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर—कितनों के नाम गिनाएं—महर्षि बाल्मिकि से लेकर महर्षि दयानंद सरस्वती एवं महात्मा गांधी, सभी सामाजिक संचेतना और समभाव के अलमबरदार रहे। इसी सुशोभित गुरुतामण्डित लड़ी की कड़ी थे—डा. भीमराव आम्बेडकर, जिनकी जन्मशती आज देश मना रहा है।

डा. आम्बेडकर एक अनोखे व्यक्तित्व के मालिक

थे—उनकी मौलिक जिजीविषा, उनका वैचारिक पैनापन व प्रखरता, उनका प्रचण्ड उत्साह और प्रतिबद्धता से उत्पन्न लक्ष्य में अटल निष्ठा, जो एक मसीहा की, एक युगवेत्ता की, एक युगप्रवर्तक की पहचान होती है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के इतिहास से उनकी भविष्यदर्शिता कितनी सटीक होकर उजागर होती है। सामाजिक न्याय एवं समग्र जागृति की जो ज्योति उन्होंने प्रज्जवलित की वह सदियों के अंधकार को और इस अंधकार में रह रहे करोड़ों समाज के, दूसरे-तीसरे नहीं, बल्कि सबसे नीची एवं निकृष्ट माने जाने वाले वर्ग को एक नई राह दिखा गई, एक नया जीवनदर्शन दिखा गई। सामाजिक नकार, शोषण एवं वंचना के शिकार दलितों को स्वत्व का स्वाभिमान दे गई।

बाबा साहेब आम्बेडकर भारत के उन महान सपूतों में से थे जिन्हें भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की देन कहा जाता है। यदि महात्मा गांधी ने हमारे स्वाधीनता आंदोलन को उपमहाद्वीप विस्तीर्णता एवं नैतिक परिभाषा दी तो बाबा साहेब ने इसे सामाजिक परिप्रेक्ष्य एवं एक सार्थक संदर्भ प्रदान किया, जात-पात-विरोधी और सही अर्थों में एक लोकतांत्रिक उद्देश्य दिया। उनका सारा जीवन इसी सामाजिक समानता और न्याय के लक्ष्य के लिए जद्दोजहद और अस्पृश्यों-दलितों (आज के अनुसूचित जातियों, जनजातियों व पिछड़े वर्गों) में जागरुकता और उनके मानवीय अधिकारों के बारे में जनमत तैयार करने, व इन्हें वैधानिक रूप में सुनिश्चित करने की दिशा में लगा ताकि मनुष्य-निर्मित विषमताओं और जन्मगत अभिशापों से अकारण प्रताड़ित ये वर्ग अपने देश व समाज के नैसर्गिक अंक बनकर इसके समग्र उत्थान में सम्मानपूर्वक अपना योगदान कर सकें, सही भूमिका निभा सकें।

हमारी वर्तमान और भावी पीढ़ियां जाति व्यवस्था की कुव्यवस्थाओं और अस्पृश्यता आदि अमानवीय प्रथाओं से शायद मुक्त हो जाएं, जिसका स्वप्न डा. आम्बेडकर ने वर्षों पहले देखा था। सुसंस्कृत एवं महान विद्वान होने, परन्तु केवल जातिगत दोष के परिणामस्वरूप जो प्रताड़ना एवं तिरस्कार उन्हें अकारण सहना पड़ा, उससे उन्होंने केवल अस्पृश्यता ही नहीं, समूची जातिप्रथा जो इसका मूल कारण थी, के परिशोधन एवं उन्मूलन का बीड़ा उठा लिया जो कि तात्कालिक सामाजिक स्थिति में निश्चयेव एवं दुश्चेष्टा ही थी। परन्तु आम्बेडकर न्याय एवं सत्य की ढाल पहने जूझ गए इस असमान संघर्ष में और समाज के चिरउपेक्षित, हीन एवं शोषित वर्गों को दृष्टिकोण परिवर्तन, अंतर्दृष्टि, बेहतर शिक्षा के अवसर एवं कानूनी संरक्षण द्वारा उत्थान की ओर प्रेरित करने में लग गए। उनके विचार में स्वाधीन भारत में, स्वयं अपने देश-भाइयों के राज में इन विसंगतियों के लिए कोई जगह नहीं थी। और फिर जबकि स्वाधीनता आंदोलन लोकतंत्र, सभी के लिए समान अधिकारों व अवसरों की प्राप्ति के लक्ष्यों को लेकर लड़ा जा रहा था। इसीलिए उन्होंने जातिप्रथा के समूल उन्मूलन और सामाजिक न्याय को अपने संघर्ष का मूलमंत्र बनाया ताकि सभी विषमताएं जो मूलतः वर्ग एवं जाति व्यवस्था से उत्पन्न हुई थीं और कालान्तर में जिन्हें देशी निहित स्वार्थों व विदेशी ताकतों ने भारतीयों में भेदभाव व फूट एवं वैमनस्य डालने के लिए वैधता दे दी थी, स्वतंत्र भारत के पावन माथे को कलंकित न कर सकें। इन्हें निरस्त करना स्वाधीन भारत का प्रथम एवं सर्वोच्च नैतिक दायित्व तथा परम नैतिक कर्त्तव्य था।

इतिहास गवाह है कि सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आवाज तो समय-समय संत महात्मा व समाज सुधारक उठाते ही रहे हैं। हमारे युग में भी महात्मा गांधी ने जब स्वाधीनता आंदोलन की बागडोर संभाली तो वह तुरंत समझ गए कि समाज के बहुसंख्यक दलित वर्ग के जीर्णोद्धार के बिना हमारा समाज स्वरचित (एवं धर्मसम्मत ?) दासता एवं नैतिक पतन के दोहरे अभिशाप से न उबर सकेगा। साथ ही इसके बिना देश की स्वाधीनता भी निष्फल सिद्ध होगी। समानतामूलक समाजवाद की स्थापना के हामी पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी कहा था "यदि भारतीय समाज जातियों-उपजातियों और ऊंच-नीच व दलित आदि वर्गों में बंटा रहेगा, तो ऐसा पातक एवं रोगग्रस्त समाजवाद का भला हम क्या करेंगे। मैं तो इसे कभी नहीं चाहूंगा।"

14 अप्रैल, 1891 को मध्य भारत (वर्तमान मध्यप्रदेश) के सैनिक छावनी नगर महू में सूबेदार मेजर रामजी आम्बेडकर की 14वीं संतान के रूप में जन्मे भीमराव ने अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं दृढ़ आत्मविश्वास के बल पर, सामाजिक अवहेलनाओं के बावजूद अर्थशास्त्र एवं कानून में उच्च शिक्षा प्राप्त की। वह स्वाधीनता आन्दोलन में इस मामले में एक अपवाद थे कि वह अधिकांश भारतीय नेताओं की तरह ब्रिटिश उदारवाद से प्रभावित न होकर (सम्भवतः अपनी अमेरिका में शिक्षा के कारण) अमेरिकी विचार-स्वातंत्र्य तथा अवसरों और अधिकारों की समानता के सिद्धान्त द्वारा प्रेरित थे। उन्होंने भारतीय स्वाधीनता के आंदोलन को दलित एवं उपेक्षित-शोषित वर्गों के समग्र सामाजिक उत्थान से जोड़ा और कहा कि ऐसा हुए बगैर हमारी आजादी न केवल निरर्थक और निष्प्रयोजन बल्कि अंग्रेजी हैट बदलकर देशी टोपी पहन लेने जैसी ही होगी। अतएव उन्होंने समाज के हीन वर्गों की वंचनाओं को समाप्त कर उन्हें भी मानवीय दर्जा देने

को सर्वाधिक तरजीह दी ताकि वे भी देश के पुनर्निर्माण में अपना विवेक और श्रम दोनों लगा सकें, बराबरी के आधार पर देश की मुख्य धारा में शामिल होकर एक नए स्वर्णिम युग का निर्माण कर सकें। इसी उद्देश्य से उन्होंने उनके अधिकारों को वैधानिक रूप देने का बीड़ा उठाया और इसके लिए तैयार होने के लिए उन्हें शिक्षा व काम के अवसर मुहैया किए जाने पर बल दिया। यहां यह कहना संगत होगा कि उनके इन प्रयासों में कहीं भी अन्य वर्गों के प्रति कटुता व बदले की भावना लेशमात्र भी नहीं दिखाई दी और न ही दलितों के उत्थान के उद्देश्य ने उनके कार्यकलाप को संकुचित किया। उनके सामाजिक मानववाद के मुख्य स्तंभ थे: (1) सभी मनुष्य समान हैं, (2) प्रत्येक मनुष्य स्वयं में एक सम्पूर्ण इकाई है, (3) सभी को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक अधिकार समान रूप से उपलब्ध हों, (4) प्रत्येक मनुष्य गरीबी, अभाव और भय से मुक्त हो, (5) सभी स्वाधीनता, समानता, भ्रातृत्भाव को बनाए रखें और मनुष्य का मनुष्य द्वारा, वर्ग का वर्ग करण, देश का देश द्वारा शोषण न हो, (6) संसदीय प्रणाली एवं लोकतंत्र में आस्था, (7) अहिंसा द्वारा सामाजिक परिवर्तन एवं उत्थान, (8) अतिवाद की मनाही, (9) आध्यात्मिक अनुशासन एवं सद्आचरण में आस्था और (10) गौतम बुद्ध के विश्वप्रेम, समानता एवं न्यायपरकता बंधुत्व के उसूलों में दृढ़ विश्वास। स्वाधीन भारत के संविधान निर्माण के महती कार्य, जिसे उनकी अपने देश की महानतम सेवा कहा जाता है, में उनकी इन सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्धता, उदार दृष्टि, समाज के सर्वांगीण विकास की कामना एवं उनका देशसेवी रूप सुन्दर ढंग से उजागर हुआ। भारतीय संविधान के इस महान जनक को शत्-शत् नमन।

आजादी के पिछले 43 वर्षों में हमारे देश के कमजोर वर्गों विशेषकर अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के कल्याणार्थ के लिए जो भी कदम उठाए गए, इन वर्गों में विशेषकर और अन्य वर्गों में सामान्य रूप से जो जागरुकता दिखाई दे रही है और जो किसी की परिवर्तन की पहली अनिवार्य अवस्था है, के पीछे डा. आम्बेडकर के सोद्देश्य आह्वान, उनके सतत् संघर्ष और उनके देश के सभी नागरिकों के प्रति कल्याणभावना की छाप स्पष्ट सुनाई देती है।

देर से सही, परन्तु राष्ट्र ने बाबासाहेब आम्बेडकर के इस महान् योगदान और स्वाधीन भारत में (सच्चे अर्थों में) समाजवादी लोकतंत्र की संकल्पना को वैधानिक रूप देने और इसकी अन्य प्रक्रियाओं की तुरतता को खुले दिल से माना है, जो निश्चय ही स्तुत्य है। डा. आम्बेडकर का चित्र संसद भवन में प्रतिष्ठित किया है। वर्तमान वर्ष को उनके जन्मशती वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। वे सभी कार्य व प्रावधान, जिन्हें वह दलित वर्गों के सर्वतोन्मुखी उत्थान व विकास के संकेतसूत्र मानते थे, जैसे सरकार में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए विधानमंडलों में पर्याप्त आरक्षण, शिक्षा-सुविधाओं का विस्तार तथा आगे बढ़ने के अवसर जुटाना और इसके लिए समुचित आरक्षण एवं सुविधा देना, सामाजिक विसंगतियों को दूर कर उन्हें समाज की मुख्य धारा में समाहित करना, सरकारी नौकरियों में आरक्षण एवं ऐसे पदों को उन्हीं के द्वारा ही भरा जाना आदि कार्य, अब स्वयं प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह की अध्यक्षता में गठित मंत्री मंडलीय समिति के पर्यवेक्षण में एक समयबद्ध (14 अप्रैल, 1991 तक समाप्य) कार्यक्रम के अंतर्गत निष्पादित किए जा रहे हैं जो कि हर्ष एवं सन्तोष का विषय है। समाज के कमजोर वर्गों को उनकी नियति पर न छोड़कर, सरकार पूरी नेक-नीयती से इन कार्यों को प्रभावी ढंग से पूरा करने जा रही है। मंडल आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के प्रति सरकार की वचनबद्धता स्वयं प्रधानमंत्री ने दोहराई है। इन सभी कार्यवाइयों से अनुसूचित जातियों व जनजातियों की स्थिति और सुधरेगी, इसमें सन्देह नहीं। इन उपायों के विरोध की खबरें भी हैं। वस्तुतः ये कदम उन्हीं आश्वासनों एवं अधिकारों का सुनिश्चितीकरण मात्र हैं जिनका वायदा हमारे संविधान-निर्माताओं तथा देशनायकों ने देश की समग्र सहमति द्वारा किया था। आशा है कि देश इन्हें एक पावन कर्तव्य की पूर्तिस्वरूप लेगा और बाबा साहेब आम्बेडकर के प्रयासों की सही परिणति का पथ प्रशस्त करेगा। भारतीय समाज को समता एवं सामाजिक न्याय की जिस पुनीत गरिमा से मंडित करने का जो सुस्वप्न उन्होंने देखा था, वह अब पूरा होगा। समानता, परस्पर सहिष्णुता एवं सहजता के इस महान् प्रणेता को इससे बड़ी श्रद्धांजलि भला और क्या होगी।

फ्लैट 37-सी, पाकेट बी, गंगोत्री एन्क्लेव,
नई दिल्ली-110019

पिछड़ी जातियां एवं सामाजिक न्याय

जे. पी. यादव

लेखक का मानना है कि आजादी के बाद पिछड़ी जातियों की सामाजिक और आर्थिक दशा में काफी सुधार हुआ है। सरकार द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयास काफी प्रभावी रहे हैं। दलितों के उत्थान में डा. भीमराव आम्बेडकर की ऐतिहासिक भूमिका का उल्लेख करते हुए लेखक ने विचार व्यक्त किया है कि डा. आम्बेडकर को सम्मान देकर सरकार ने न केवल पिछड़ी जातियों का दिल जीता है बल्कि उनके कार्यों को आगे भी बढ़ाया है। सरकार ने सामाजिक न्याय को व्यावहारिक रूप प्रदान करने की दिशा में ठोस कदम भी उठाये हैं। लेखक ने राजनेताओं, स्वयंसेवी संस्थाओं, बुद्धिजीवियों और नवयुवकों का आह्वान किया है कि वे सभी को समानता के आधार पर सामाजिक न्याय दिलाने के लिए आगे आएं।

डा. भीमराव आम्बेडकर के विचारों के अनुरूप राष्ट्रीय मोर्चा सरकार समाज में पिछड़े एवं दलित वर्ग के लोगों के उत्थान के लिए कृत संकल्प है। प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्पसंख्यक एवं पिछड़े वर्ग के लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए विशेष प्रयास किये हैं। डा. आम्बेडकर को सम्मान देकर सरकार ने पिछड़ी जातियों का दिल जीत लिया है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग को व्यापक अधिकार दिये गये हैं। मंडल आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक पिछड़े वर्गों को सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण देने का निर्णय कर शासनतंत्र में इन वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है। सरकार का संसद और विधानसभाओं में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लिए चालीस प्रतिशत स्थान आरक्षित करने के लिए संविधान में संशोधन करने का विचार है। ये सब प्रयास पिछड़ी जातियों को 'सामाजिक न्याय' दिलाने की दिशा में सराहनीय प्रयास हैं।

दलितों के मसीहा—डा. आम्बेडकर

डा. भीमराव आम्बेडकर दलित जाति में पैदा हुए। उन्होंने जातीय भेदभाव की यंत्रणायें झेलीं। अपने जीवनकाल में उन्होंने दलितों के उत्थान के लिए काफी संघर्ष किया। वे अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, शिक्षा, विधि एवं राजनीति के ज्ञाता थे। विधि के प्रखर विद्वान होने के कारण उन्हें अन्तरिम सरकार में विधि मंत्री और संविधान की 'प्रारूप समिति' का अध्यक्ष बनाया गया। उन्होंने पूना समझौते के अन्तर्गत दलितों को दिये गये आश्वासनों को संवैधानिक प्रावधानों का रूप दिया। समतामूलक समाज के निर्माण के लिए समाज के पिछड़े वर्गों को विशेष अवसर देने के सिद्धांत का संविधान में समावेश कर उन्होंने अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए विधान मंडलों, सरकारी नौकरियों तथा शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण की व्यवस्था की। दलित जातियों को आरक्षण के रूप में सुरक्षा प्रदान करके डा. आम्बेडकर ने हिन्दू धर्म से अन्य धर्मों में जाने की प्रक्रिया को रोक दिया। उन्होंने 'हिन्दू कोड

बिल' के द्वारा हिन्दू समाज में क्रांति ला दी।

संवैधानिक प्रावधान

संविधान के तीसरे भाग में दलितों के हित में कई प्रावधान किये गये हैं। अनुच्छेद 15 में यह प्रावधान है कि जाति, धर्म, लिंग, नस्ल आदि के कारण किसी को कुएं, तालाब, स्नानघाट, सड़क, होटल, मनोरंजन-स्थल, दुकान, सार्वजनिक उपहारगृह आदि में जाने से नहीं रोका जा सकता। अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता समाप्त कर दी गयी है। अनुच्छेद 295 (2) के अंतर्गत राज्य द्वारा स्थापित या राज्य से सहायता प्राप्त शिक्षण संस्था में उपरोक्त आधार पर भर्ती पर प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता। अनुच्छेद 16 (4) के अनुसार राज्य किसी भी पिछड़े वर्ग के लिए, जिनको राज्य सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला है, आरक्षण कर सकता है।

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में भी सामाजिक न्याय प्राप्त करने पर विशेष ध्यान दिया गया है। अनुच्छेद 38 में कहा गया है कि राज्य जनसाधारण के कल्याण के लिए प्रभावी ढंग से सामाजिक व्यवस्था स्थापित और सुरक्षित रखेगा। राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय दिलवाने का प्रयास किया जायेगा। अनुच्छेद 39 के अनुरूप प्रत्येक नागरिक को जीविका का अधिकार है। समाज के भौतिक संसाधनों के स्वामित्व तथा नियंत्रण का इस ढंग से वितरण हो कि आम जनता का कल्याण हो। आर्थिक व्यवस्था से सम्पत्ति व उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण न हो। समान काम के लिए समान वेतन हो तथा बच्चों व युवकों का शोषण न हो। अनुच्छेद 40 में कहा गया है कि राज्य, क्षमता एवं आर्थिक विकास के अंतर्गत काम और शिक्षा के अधिकारों, बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और विकलांगता की स्थिति में सार्वजनिक सहायता का प्रभावी प्रबंध करेगा।

समता के बिना स्वतंत्रता बेमानी

हमारा स्वतंत्रता आन्दोलन स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के जिन मूल्यों को लेकर चला था उनको संविधान की प्रस्तावना में शामिल कर लिया गया है। डा. आम्बेडकर ने राष्ट्रीय आन्दोलन में समता के मूल्य को प्रतिष्ठित करने का महत्वपूर्ण काम किया। उनका मानना था कि समता के बिना स्वतंत्रता बेमानी है। डा. आम्बेडकर की प्रासंगिकता इस देश में चल रही समता की प्रक्रिया के कारण है जिसके आधुनिक भारत में वे सबसे जबर्दस्त प्रवक्ता थे।

सरकारी प्रयासों का प्रभाव

आजादी के बाद हमारे देश में संवैधानिक प्रावधानों व सरकारी योजनाओं में पिछड़े वर्गों के उत्थान के काफी प्रयास किये गये हैं। अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए विधानमंडलों, सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था हर 10 वर्ष बाद बढ़ाई गई है। इस व्यवस्था से सरकारी नौकरियों में इनकी संख्या बढ़ने लगी है। जहां आजादी से पूर्व सरकारी नौकरियों में इन जातियों के लोग नगण्य थे अब वे पढ़-लिखकर आगे आने लगे हैं। कई मामलों में तो आरक्षित वर्गों के लोग अन्य जातियों से प्रतियोगिता में आगे आने लगे हैं। सरकार ने इनके बच्चों के लिए छात्रवृत्ति, नौकरियों के लिए विशेष कोचिंग तथा विशेष भर्ती अभियान शुरू कर इन्हें सामाजिक न्याय दिलाने का अच्छा प्रयास किया है।

शिक्षा के प्रसार से छुआछूत में कमी आयी है। हरिजनों पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ सरकार द्वारा बनाये कठोर कानूनों से इन्हें विशेष राहत मिली है। स्वयं का धंधा करने हेतु सरकारी ऋण एवं अनुदान का लाभ उठाकर इस वर्ग के कई लोग अपने पैरों पर खड़े हो गये हैं। उच्च पदों पर पिछड़ी जातियों के लोग आने लगे हैं। अल्पसंख्यकों के लिए सरकार ने अनेक कार्यक्रम हाथ में लिये हैं। इससे देश के दलित एवं अल्पसंख्यक अपने को सुरक्षित महसूस करने लगे हैं।

सामाजिक न्याय

डा. आम्बेडकर उस सम्पूर्ण जनता को दलित वर्ग में मानते थे जो जाति व्यवस्था के कारण सदियों से शिक्षा, सम्पत्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा के अधिकारों से वंचित थी। संविधान का प्रारूप बनाते समय उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि जिन दलित जातियों को समयाभाव के कारण सूचीबद्ध नहीं किया जा सका है उनके आरक्षण आदि निश्चित करने के लिए अलग आयोग काम करेगा। संविधान के अनुच्छेद 340 के अंतर्गत 29 जनवरी 1953 को 'काका कालेलकर आयोग' गठित किया गया। सरकार ने इस आयोग की सिफारिशों को नामंजूर कर दिया। 1 जनवरी 1979 को 'मण्डल आयोग' गठित किया गया। मण्डल आयोग ने पिछड़ेपन को निर्धारित करने के लिए सामाजिक, शैक्षिणिक तथा आर्थिक मानदण्ड निर्धारित किये। विभिन्न राज्यों की सरकारों के आर्थिक विभाग के अधिकारियों द्वारा "सैम्पल सर्वे" कराया गया। इसमें नमूना सर्वेक्षण करने के लिए निर्धारित अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमानों का पालन किया गया।

'मण्डल रिपोर्ट' के अनुसार अन्य पिछड़े वर्गों की जनसंख्या देश की कुल जनसंख्या का 52 प्रतिशत है किन्तु संविधान के अनुच्छेद 15 (4) और 16 (4) के अन्तर्गत आरक्षण की व्यवस्था 50 प्रतिशत से कम होनी चाहिए। अतः आयोग ने पिछड़े वर्गों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की है।

'मण्डल आयोग' ने अन्य पिछड़ी जातियों के सर्वांगीण विकास के लिए अनेक सिफारिशें की हैं। पिछड़े वर्गों के लोगों

को लघु एवं कुटीर उद्योग लगाने हेतु वित्त उपलब्ध कराना चाहिए। इन वर्गों को वित्तीय तथा तकनीकी सहायता प्रदान करने हेतु पृथक वित्तीय संस्थायें स्थापित की जायें। अध्ययनरत छात्रों को छात्रवृत्ति सुलभ करानी चाहिए। फालतू भूमि पिछड़े वर्ग के भूमिहीन मजदूरों को आवंटित करनी चाहिए। केन्द्र तथा राज्यों को अन्य पिछड़े वर्गों के हितों की रक्षा के लिए एक पृथक मंत्रालय स्थापित करना चाहिए। इन वर्गों के विशेष कार्यक्रमों के लिए केन्द्र सरकार को पर्याप्त धन उपलब्ध कराना चाहिए।

गरीबों के लिए विशेष योजना

प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने घोषणा की है कि सरकार संसद और विधानसभाओं में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लिए 40 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने के लिए संविधान में संशोधन करेगी। उन्होंने कहा कि सबको मिलकर ऐसा निर्णय लेना होगा जिससे इन वर्गों के उपेक्षित लोगों को निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी मिल सके। आरक्षण का अर्थ केवल रोजगार के अवसर पैदा करना नहीं बल्कि कमजोर वर्गों को निर्णय प्रक्रिया में शामिल करना है।

समस्यायें एवं सुझाव

आजादी के बाद पिछड़ी जातियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। सरकार द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयास काफी प्रभावी रहे हैं। अब इन जातियों के लोग शिक्षा की ओर अग्रसर होने लगे हैं, किन्तु अभी भी सामाजिक समानता पूरी तरह से स्थापित नहीं हो सकी है। इसका कारण बड़ी जाति की जन्मजात संकीर्णता है। सभी जातियों में पढ़े-लिखे लोग प्राय: उन्हीं की जातियों से आते हैं क्योंकि अन्य जातियों को इस जाति व्यवस्था ने सदियों से शिक्षा के अधिकार से वंचित कर रखा था। शिक्षित तबका भी जातिगत संकीर्णता से ऊपर उठ कर नहीं सोच सका है। इन्होंने दलित वर्गों की समता तथा स्वतंत्रता की आकांक्षाओं को समझा ही नहीं। सरकार जब इस दिशा में कुछ करती है तो ये लोग ऐसे कार्यों की प्रशंसा नहीं करते। सार्वजनिक स्थानों आदि में जाने से भी हरिजन अभी झिझकते हैं। आये दिन इन मुद्दों को लेकर आपसी तनाव एवं मनमुटाव की घटनायें होती रहती हैं। हरिजनों को साथ बैठाकर खिलाने को आज भी सवर्ण लोग तैयार नहीं हैं। धार्मिक आडम्बर भी समता में बाधक हैं। समाज एवं धर्म के तथाकथित ठेकेदारों को सामाजिक समता स्वीकार नहीं है। वे दलितों को आगे बढ़ते नहीं देख सकते। जब तक सम्पूर्ण मानव जाति में आपसी सद्भाव एवं भाईचारे की भावना नहीं आयेगी तथा उच्च जाति के लोग ऊंच-नीच को छोड़कर पिछड़ी जातियों को गले नहीं लगायेंगे तब सही अर्थों में समानता स्थापित नहीं हो पायेगी। अत: सरकारी प्रयासों के साथ-साथ इस कार्य में सबको मिलजुल कर प्रयास करना होगा। राजनेताओं, स्वयंसेवी संस्थाओं, बुद्धिजीवियों एवं नवयुवकों को पिछड़ी जातियों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए आगे आना चाहिए। डा. आम्बेडकर, डा. राममनोहर लोहिया जैसे समाजवादी विचारकों के विचारों एवं नीतियों को अपनाकर देशवासियों में आपसी प्रेम एवं भाईचारे की भावना बढ़ाने का सभी देशवासियों को संकल्प लेना चाहिए।

27, कल्याण कालोनी,
टोंक फाटक, जयपुर (राजस्थान)

सामाजिक न्याय : समानता व समभाव पर आधारित हो

मान सिंह 'मान'

हमारा संविधान समानता के सिद्धांत पर आधारित समाज की परिकल्पना करता है, एक ऐसे समाज की परिकल्पना जिसमें धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर कोई भी विभेद निषेध है। फिर जाति के आधार पर विशेष अधिकारों की आखिर क्या प्रासंगिकता है? संविधान के निर्माता बाबा साहेब डा. भीमराव आम्बेडकर के इस विषय में क्या विचार थे? बाबा साहेब द्वारा सुझाए गए समाधानों की पृष्ठभूमि क्या थी?

इन सभी सामाजिक मुद्दों की बिना किसी पूर्वाग्रह के चर्चा की है विद्वान लेखक मान सिंह ने अपने इस लेख में। लेखक की दृष्टि में असमानता मात्र सामाजिक कुरीति नहीं, आध्यात्मिक अवनति भी है। लेखक के अनुसार श्रीराम, श्रीकृष्ण, गुरु नानक देव जी एवं सन्त कबीर जी आदि द्वारा प्रतिपादित समानता के सिद्धान्त को ही बाबा साहेब आम्बेडकर ने व्यावहारिक जामा पहनाने के लिए संघर्ष किया जिसकी परिणति हुई संविधान के अनेकों प्रावधानों में।

अव्वल अल्ला नूर उपाया, कुदरत के सब बन्दे।
एक नूर ते सब जग उपजया, कौन भले को मन्दे।।

—सन्त कबीर

सन्त शिरोमणि कबीरजी ने कहा है कि सारे मनुष्य एक परमपिता परमात्मा की सन्तान हैं। कोई साधारण या कोई विशेष नहीं, सभी एक नूर से ही उत्पन्न हैं। एक परमात्मा की सन्तान हैं, इसलिए सभी समान हैं। कोई बड़ा या छोटा नहीं है। अतः बाबा साहेब आम्बेडकर का कहना इस मायने में सही है कि सभी मानव समान हैं।

निस्संदेह आज भी समाज में मानव-मानव के बीच घृणा मौजूद है। किसी को विशेष, किसी को साधारण और किसी को निम्न समझा जाता है। जब से संसार बना है, तब से लेकर आज तक कोई समय ऐसा नहीं आया, जिसमें असमानता न रही हो। यही भेदभाव आज तक हमारे समाज में एक नासूर बना हुआ है। इसके कारण ही समाज में घृणा, ईर्ष्या, द्वेष और नफरत आदि का अस्तित्व रहता है और मानव, मानव से वैर करने लगता है। स्थिति उस वक्त और अधिक भयावह हो जाती है, जब इस समाज को जात-पात के आधार पर बांट दिया जाता है और इसके साथ ही पाप-पुण्य की भावनाएं जोड़ दी जाती हैं। निस्संदेह यह स्थिति समाज के लिए आज भी उतनी ही दुखद है।

ऐसी मान्यता है कि इस समाज का वर्गीकरण मनु-स्मृति में किया गया। इसमें अनेक भ्रान्तियां हैं जो कई विद्वानों के गले से नहीं उतरतीं, उन्होंने इसको नकारा है और इसका घोर विरोध भी किया है। परन्तु इसके बारे में अभी भी बहुत कुछ सोचना है

और इसको यथार्थ में लाना बाकी है। तभी हम कह सकेंगे कि मनु-स्मृति की यह मान्यता ठीक है या नहीं।

दरअसल इस वर्गीकरण का भाव हर मानव को उसकी रुचि के अनुसार कार्यक्षेत्र बांटना था। जैसे ब्राह्मण का कर्म है कि वह विद्या प्राप्त करे और विद्या का दान दे। क्षत्रिय का कर्म है कि वह शस्त्र-विद्या सीखे तथा देश और समाज की समय आने पर सुरक्षा करे। वैश्य का कर्तव्य है कि वह समाज की आवश्यकतानुसार चीजों का व्यापार करे और खेती-बाड़ी करके समाज के लिए आवश्यक वस्तुएं अपनाये। शूद्र का कर्तव्य है कि वह इन तीनों वर्गों की सेवा का कर्तव्य निभाये। किन्तु इस सारे वर्गीकरण में कोई जातीय भेदभाव न था।

कालान्तर में यह वर्गीकरण जो कर्म क्षेत्र में समाज की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए बनाया गया था, दुर्भाग्यवश परिस्थितियों ने उसको जन्म से जोड़ दिया और सेवा का कर्तव्य निभाने वाले वर्ग को अछूत मानकर घृणा का पात्र बना दिया गया। यहां तक कि इनके स्पर्श मात्र को अपवित्रता और पाप की भावना के साथ जोड़ दिया गया। हालांकि अध्यात्मवाद में कभी भी ऐसी शिक्षा नहीं दी गई। इतिहास साक्षी है कि जब-जब समाज में यह भावना आई, तो भगवान ने अवतरित होकर इसको खत्म करने के प्रयत्न किये। श्री राम भगवान के समय में भी शबरी को अछूत समझा जाता था। भगवान की पूजा करने वाले ऋषि-महात्मा पवित्र आत्मा होते हुए भी इस वहम् में फंस गये कि शबरी अछूत है। इसके साथ किसी प्रकार का सामाजिक व्यवहार रखना पाप है। भगवान राम ने उस शबरी के जूठे बेर खाकर अपने आचरण से ऋषियों को यह समझाया कि जहां घृणा है वहां भगवान का आशीर्वाद नहीं है, भले ही वह कितनी ही ऊंची जाति का हो।

इसी तरह से श्री कृष्ण जी ने भी दुर्योधन का भोजन, जो कई प्रकार के व्यंजनों से ओत-प्रोत था, को छोड़कर विदुर की रूखी-सूखी खाकर यह सिद्ध किया कि वे ऊंच-नीच में विश्वास नहीं रखते और जिस घट में भगवान के प्रति श्रद्धा नहीं है, वहां भगवान का आशीर्वाद कदापि नहीं है।

कालान्तर में श्री गुरु नानक देव जी महाराज अवतरित हुए और सर्वप्रथम उन्होंने बाला और मरदाना को अपने दाएं-बाएं रखकर यह सिद्ध किया कि वे केवल मानव हैं और जाति के भेदभाव उनको मान्य नहीं हैं। उनके समय में भी एक ऐसी घटना इतिहास में आती है कि जब उन्होंने एक जागीरदार मलिक भागो के घर की खीर और मालपुवे नहीं खाये और अपने एक श्रद्धालु गरीब भक्त, जो कि एक बढ़ई था, के घर की रूखी-सूखी खाकर आशीर्वाद प्रदान किया और यह सिद्ध किया कि मानव-प्यार, पैसे से कहीं अधिक महत्त्व रखता है।

इसी सिलसिले में आज से एक सदी पहले इसी तरह की घृणा का वातावरण भारत में चरम सीमा पर था। देश को आजाद कराने की लहर जन-जन में जोश पैदा कर रही थी। बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी आदि की रहनुमाई में अंग्रेजी शासकों के चंगुल से भारत माता को आजाद कराने के प्रयास सोचे जा रहे थे। उन्हीं दिनों अछूत कहलाये जाने वाले वर्ग को छुआछूत मानने वाले समाज में बराबरी का अधिकार दिलाने के लिए डा. भीमराव आम्बेडकर ने अपना सारा जीवन संघर्ष में गुजारा।

भारत के आधुनिक इतिहास में सदियों की गुलामी से निजात पाकर मानवता की भावना को उजागर करने की लहर चली। आजादी के संघर्ष के दौरान देश में यह आवाज गूंजी कि हिन्दुओं में अछूत माने जाने वाले हिन्दुओं को भी मानवता के समान अधिकार मिलने चाहिए। यह आवाज सन् 1891 ई. में पैदा होने वाले डा. आम्बेडकर द्वारा उठायी गयी। वह स्वयं भी एक अछूत माने जाने वाले महार परिवार में पैदा हुए थे और उन्होंने सारे अत्याचारों को अपने ऊपर भोगा था।

गांधीजी जो उस समय स्वतंत्रता संग्राम के सर्वेसर्वा थे, ने भी हरिजनों के पक्ष में यह आवाज उठा रखी थी किन्तु इन दोनों में केवल अन्तर यह था कि गांधीजी दलित वर्ग के लिए थे और डा. आम्बेडकर दलित वर्ग के थे। महात्मा गांधी आंखों देखी कहते थे, जबकि आम्बेडकर आप बीती कहते थे। एक ही उद्देश्य के लिए दोनों महानुभावों के सोचने समझने और संघर्ष के विचारों में भी भिन्नता थी। यही कारण है कि गांधीजी को भी उनके बारे में यह सोचना पड़ा कि डा. आम्बेडकर आज के समाज के लिए एक चुनौती हैं।

डा. आम्बेडकर अपने समय के महान विद्वान थे। उनका जन्म महार जाति के एक रामजी मौलाजी आम्बेडकर के घर 14 अप्रैल, 1891 को हुआ। 'महार' जाति को महाराष्ट्र में अछूत माना जाता था।

केन्द्र की वर्तमान राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने डा. बाबा साहेब की सेवाओं को सम्मानित करते हुए उनका आदमकद चित्र संसद के केन्द्रीय कक्ष में लगा दिया। अब उन्हें 'भारतरत्न' की पदवी भी दे दी गयी। पर सबसे बड़ी बात यह हुई कि 14 अप्रैल को सरकार की ओर से उनकी 99वीं जयन्ती मनाई गयी। उस दिन को कार्यालयों में सवेतन छुट्टी रखी गयी और पूरे वर्ष को सामाजिक न्याय, जिसके लिए डा. आम्बेडकर जिये और मरे, मनाने की बात भारत के प्रधानमंत्री श्री वी. पी. सिंह की ओर से

कही गई। मध्य प्रदेश की सरकार ने 'बाबा साहेब आम्बेडकर राष्ट्रीय संस्थान' स्थापित करने की घोषणा की और महू में उसे स्थापित करने के लिए 50 एकड़ जमीन दी। महाराष्ट्र सरकार उनकी पुस्तकों, लेखों और भाषणों को छाप रही है। इस माला में 8 पुस्तकें छप चुकी हैं, कुछ प्रेस में हैं और कुछ अन्य स्तरों पर हैं।

आखिर यह कोलाहल क्यों? तथ्य यह है कि डा. आम्बेडकर की इस वर्ष जन्मशती मनायी जा रही है। पर इसी के साथ जुड़ा हुआ दूसरा प्रश्न है कि जन्मशती मनायी ही क्यों जा रही है? इस देश में अरबों व्यक्ति पैदा हुए पर कितनों को यह श्रेय प्राप्त है? इसके साथ राजनीति भी घुली-मिली है। पर करोड़ों पढ़े-अनपढ़े, भूखे-नंगे जो डा. आम्बेडकर के नाम के पीछे खड़े हैं, उन्हें इससे क्या लेना-देना है? इसका तो मुख्य कारण डा. बाबा साहेब का इन दलितों, शोषितों के प्रति समर्पण, जीवन पर्यन्त इनके लिए संघर्ष है।

डा. आम्बेडकर अपनी जाति को छुआछूत वाले ब्राह्मणवाद से मुक्त कराने के लिए चिंतित रहते थे। वे सोचते थे, कि इन हिन्दुओं में उन्हें अछूत समझने का भाव युगों-युगों का है, जिसे दूर करना सम्भव नहीं।इसलिए वे अपने वर्ग का अलग ही अस्तित्व चाहते थे। उनका कहना था कि भारत की हिन्दू आबादी में हर पांचवां आदमी, औरत, बच्चा अछूत हिन्दू है। यह आबादी उस समय के भारत के मुसलमानों की आबादी के लगभग बराबर थी। इसलिए वे इतनी भारी तादाद के दलित समाज को सदा के लिए इस समाज में घृणा का पात्र बने रहना स्वीकार नहीं कर सकते थे। उनके मन में मानवता को प्रजातंत्र से अलग रखना सामाजिक न्याय नहीं था। इस सन्दर्भ में भारतीय संविधान पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था :

"राजनैतिक प्रजातंत्र तब तक नहीं चल सकता, जब तक कि इसकी पृष्ठभूमि सामाजिक समानता पर आधारित न हो। प्रश्न यह है कि सामाजिक, भ्रातृत्व, समानता पृथक-पृथक श्रेणियों में नहीं बल्कि एक ही स्थान पर उपलब्ध है। यदि इस त्रिमूर्ति को पृथक-पृथक करें तो प्रजातंत्र के मूल का विनाश हो जाता है। आजादी से इसी प्रकार स्वतंत्रता को समानता व भ्रातृत्व भाव से, पृथक नहीं किया जा सकता।"

डा. भीमराव बाबा साहेब आम्बेडकर भारतीय संविधान के निर्माता माने जाते हैं। भारतीय संविधान में हर नागरिक के लिए समानता का अधिकार सुरक्षित किया गया है। इसी समता के अधिकार के लिए डा. आम्बेडकर ने अपना सारा जीवन बड़ी-बड़ी ताकतों से जूझने में लगाया और आखिरकार देश की आजादी लेने के बाद प्रथम भारतीय विधि एवं न्यायमंत्री के पद पर नियुक्त हुए। उस समय के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने बाबा साहेब आम्बेडकर को भारतीय संविधान का निर्माण करने का दायित्व सौंपा। डा. आम्बेडकर सर्वसम्मति से संविधान सभा के अध्यक्ष चुने गये। आपने इस पद पर रह कर पूरी तरह न्याय किया और जो भी कानून बनाया, उसमें सामाजिक न्याय की भावना को सदा सम्मुख रखा। यही कारण है कि भारतीय संविधान की हर धारा से मानववाद (मानवहित) की सामाजिक भलाई दिखाई पड़ती है। सामाजिक न्याय की भारतीय संविधान में महत्ता और भी बढ़ गयी जब आपने समता का अधिकार सुरक्षित किया और कहा कि कोई नागरिक केवल धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या उनमें से किसी के आधार पर कोई भी भेदभाव नहीं करेगा।

संविधान में समता का अधिकार सुरक्षित करते समय बाबा साहेब इस लक्ष्य के प्रति भी सतर्क थे कि सदियों से दबे दलित समाज को समानता के स्तर तक उठाने के लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता होगी। बाबा साहेब के अनुसार सामाजिक ढांचे में मूल परिवर्तन किए बिना समानता की बात बेमानी थी। समानता का प्रावधान उनके लिए है जिन्हें जीवन में समान अवसर प्राप्त हुए हों। जो अभी मौलिक मानवीय अधिकारों से भी वंचित हैं, उनकी समानता के आधार पर साधन सम्पन्नों से स्पर्धा अर्थहीन है, समानता के नाम पर असमानता बनाए रखने का षड्यंत्र है।

भारतीय समाज की इस विषमता को बाबा साहेब ने समझा तथा समानता के अधिकार को अर्थपूर्ण बनाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 15 और 16 में दलितों, स्त्रियों एवं बच्चों के लिए विशेष सुविधाएं प्रदान करने का प्रावधान किया। संविधान के इन्हीं अनुच्छेदों के अंतर्गत अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। सदियों से दबे दलितों को प्रगति के समान अवसर प्रदान करने की दिशा में यह एक ऐसा क्रांतिकारी कदम था, जिसका श्रेय बाबा साहेब के निरंतर संघर्ष को जाता है।

बाबा साहेब ने संविधान को सामाजिक न्याय देने और दिलाने का सशक्त साधन माना। उपेक्षित वर्ग को सम्पन्न वर्ग से अधिक सुविधाएं प्रदान करते समय भी वह स्पष्ट थे कि अन्ततः समानता के सिद्धान्त पर आधारित समाज की स्थापना ही संविधान का मुख्य मन्तव्य हो सकता है। बाबा साहेब के अनुसार आरक्षण दलितों की समस्या का स्थायी समाधान नहीं था। आरक्षण मात्र एक ऐसी सीढ़ी थी जिसके माध्यम से इस दबे हुए वर्ग को समाज के अन्य घटकों के बराबर उठाना था। उस स्थिति पर पहुंचने के बाद आरक्षण प्रभावहीन हो जाना

चाहिए। देश के विकास के लिए अन्ततः समता के सिद्धान्त पर आधारित न्याय ही कारगर सिद्ध हो सकता है।

संविधान के निर्माताओं ने संविधान के अनुच्छेद 15 में धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर किसी भी विभेद को असंवैधानिक घोषित करने के साथ ही अनुच्छेद 15.4 में निम्न प्रावधान किया:

(4) इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के उन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

इसी प्रकार का प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 16.4 में भी है जिसके अंतर्गत राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के हित में नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए व्यवस्था करने का अधिकार प्राप्त है।

यह कहना गलत न होगा कि बाबा साहेब के दलितोद्धार के संघर्ष की ही परिणति संविधान के इन प्रावधानों में हुई। बाबा साहेब ने दलितों की त्रासदी पढ़ी या सुनी नहीं, बल्कि झेली थी। अतः उनके द्वारा सुझाए समाधान व्यावहारिकता के बहुत करीब हैं।

समानता के इस संविधान सम्मत ध्येय को सार्थकता प्रदान करने के विचार से संविधान के अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता का अन्त किया गया तथा अस्पृश्यता का किसी प्रकार से भी आचरण करने को दंडनीय माना गया। संविधान के ये सभी प्रावधान समभाव एवं समानता को सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित करने की दिशा में सार्थक कदम थे जिसकी रूपरेखा बनाने में बाबा साहेब डा. आम्बेडकर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

डा. आम्बेडकर ने गरीब, मजदूर और अन्य निर्धन वर्गों के लिए संवैधानिक अधिकार को सामाजिक न्याय की दृष्टि से पूरी तरह सुरक्षित करते हुए संविधान की धारा में स्पष्ट चर्चा की। राज्यों के लिए इस नीति का पालन करने का आदेश दिया गया—

39. **राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व**—राज्य अपनी नीति का, विशिष्टतया, इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से—

(क) पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो,

(ख) समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो;

(ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेंद्रण न हो;

(घ) पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो;

(ङ) पुरुष और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों;

(च) बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाएं और बालकों और अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए।

(39क—**समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता**—राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह, विशिष्टया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य नियोग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा)।

बाबा साहेब आम्बेडकर एक कर्मयोगी थे और किसी का विरोध केवल विरोध के लिए नहीं करते थे। उनके सामने एक लक्ष्य होता था। उन्होंने नागपुर में 14 अक्तूबर, 1956 को बौद्ध धर्म ग्रहण करते हुए अपने अभिभाषण में कहा था कि "वर्णवाद पर आधारित व्यवस्था को भंग करना तथा समतावादी व्यवस्था की स्थापना करना उनका उद्देश्य है और इस दृष्टि से उनके सामने यह प्रश्न है कि वह कैसे इस व्यवस्था को भंग करें।" उन्होंने यह भी कहा कि—"इस प्रश्न के कारण ही मैं आप लोगों को भगवान बुद्ध के धर्म से पूर्णतया परिचित कराना चाहता हूं। यह मेरा कर्तव्य भी है। इसके लिए मिशनरी संगठन होना चाहिए और भिक्षु पारंगत होने चाहिए।"

इस अवसर पर डा. आम्बेडकर अछूतों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए न केवल विशाल हिन्दू संगठनों के विरुद्ध लड़े, बल्कि उन्हें बौद्ध धर्म के भिक्षुओं ने नाराज होकर यहां तक कह दिया कि डा. आम्बेडकर का यह प्रयास आध्यात्मिक उत्थान के लिए नहीं बल्कि राजनीति से अनुप्रेरित होकर किया जा रहा है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह डाला कि डा. आम्बेडकर को बौद्ध

धर्म का ज्ञान ही नहीं है। इस विरोध और अहंकार में वे यह भूल गये कि डा. आम्बेडकर कर्तव्यनिष्ठ व मानवता प्रेमी इंसान हैं। जिन्होंने अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए इस बात पर जोर दिया था कि व्यक्ति को आत्म-केन्द्रित नहीं बनना चाहिए और अपने दृष्टिकोण को संकीर्ण नहीं बनाना चाहिए। स्वतंत्रता तथा आध्यात्मिकता की उपलब्धि का दृढ़ संकल्प ही डा. आम्बेडकर को बौद्ध बना सका था। उनका धर्म परिवर्तन न केवल अपने लिए था अपितु शोषित तथा उपेक्षित जन के लिए था। बौद्ध धर्म धारण करके भी वह निष्क्रिय नहीं हुए थे।

7 अगस्त 1990 को भारत के संसद भवन में और 15 अगस्त को लाल किले के ऐतिहासिक मंच से भारत के प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने यह घोषणा की कि वह 27 प्रतिशत सुविधाएं पिछड़े वर्ग के लिए सुरक्षित करते हैं। इसकी पृष्ठभूमि में उन पर डा. आम्बेडकर की विचारधारा का असर दिखाई देता है। बाबा साहेब आम्बेडकर की जन्मशती के अवसर पर यदि सरकार दलितों एवं शोषितों के लिए सचमुच सही मायनों में कुछ करना चाहती है, तो पूरा देश उसका स्वागत करेगा। फिर भी आज यह आवश्यक हो गया है कि आरक्षण नीति पर खुले दिमाग से विचार किया जाए। इसे किसी वर्ग विशेष के लिए प्राथमिकता का मुद्दा न मानकर पिछड़े वर्गों के सामाजिक एवं शैक्षणिक उत्थान का साधन माना जाए। इसके साथ ही यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि इन सुविधाओं का लाभ उन लोगों तक पहुंचे जिनको इनकी अत्यधिक आवश्यकता है। गंदी बस्तियों में नारकीय जीवन बिता रहे लोगों को इसी प्रकार सुख-सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाएं, जैसे कि अमीर-नगरों एवं बस्तियों में करवाई जाती हैं। यदि सरकार की हार्दिक इच्छा है कि पिछड़ा वर्ग भी उन्नत हो, जिस प्रकार अमीर का लड़का पब्लिक स्कूलों में पढ़ रहा है उसी प्रकार ग्रामीण इलाकों में नवोदय स्कूल स्थापित किये जाएं ताकि वह लड़का भी उस स्तर तक पहुंच सके जिस प्रकार एक माडर्न स्कूल का लड़का पहुंच जाता है। यही नहीं गरीबों की उद्योगों में भी भागीदारी सुरक्षित की जाए। गांव-गांव में प्राथमिकता के आधार पर उच्च शिक्षण संस्थान एवं तकनीकी संस्थान खोले जाएं, ताकि गांव का पिछड़ा वर्ग जो दूर-दराज शहरों में जाकर शिक्षा पाने में असमर्थ है और इतना व्यय भी नहीं कर सकता कि वह वहां जा सके। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि उनको इस प्रकार की सुविधाएं उन्हीं के गांवों में उपलब्ध कराई जाएं, तभी हम सकारात्मक रूप में पिछड़े वर्ग के लोगों का कल्याण कर सकेंगे।

गांधीजी ने भी कहा था कि हमें समाज में ऊंच-नीच के भेदभाव को मिटा देना चाहिए। हम सभी एक ही वृक्ष के पत्ते हैं, बेशक अलग-अलग दिखाई देते हैं। परन्तु एक पत्ते और दूसरे पत्ते में कोई भेद नहीं है। वे सब समान हैं।

आज डा. आम्बेडकर हमारे बीच नहीं हैं, परन्तु उनकी विचारधारा हमारे सामने प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है। काश, हम भारत के नागरिक, देश की उलझती हुई समस्याओं को हल करने हेतु उनकी समतावादी दृष्टि से देख पायें, तो कोई कारण नहीं कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का समाज कल्याण का स्वप्न पूरा न हो।

फ्लैट नं. 5, गली नं. 7
संत निरंकारी कालोनी, दिल्ली-110009

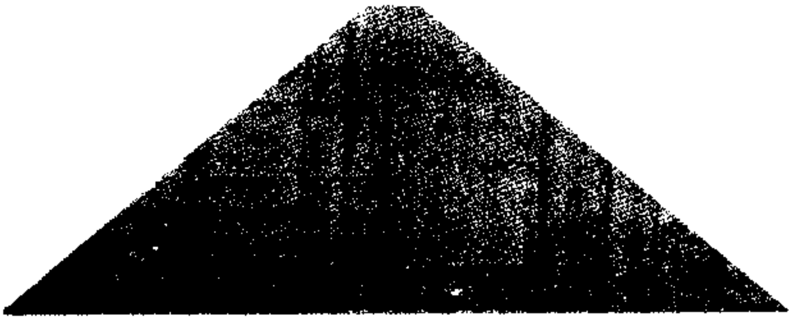

डा. आम्बेडकर और सामाजिक न्याय

रमेश चन्द्र

डा. आम्बेडकर ने समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए जीवन भर संघर्ष किया। यह निश्चय ही किसी और के बस की बात न थी। मात्र उनके इस साहस एवं सूझबूझ की भरपूर सराहना करके वर्तमान समाज में सुधार नहीं लाया जा सकता। इसके लिए हमें वे कार्य करने होंगे जिनके लिए बाबा साहेब आम्बेडकर को जीवन भर संघर्षरत रहना पड़ा।

श्री रमेश चन्द्र ने अपने लेख में बाबा साहेब के उपकारों का जो वर्णन किया है वह केवल स्तुति का विषय नहीं बल्कि हमारे समाज सुधार की मंजिल तक पहुंचने का मील-पत्थर है।

फ्रांसीसी दार्शनिक रूसो ने लिखा है, "मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है लेकिन सर्वत्र सींकचों में जकड़ा हुआ है।" रूसो प्रकृतिवादी थे और रूसो के तीन शब्दों "समानता, स्वतंत्रता और भाईचारा" ने फ्रांस में 1789 में क्रांति कर दी थी। डा. आम्बेडकर रूसो के इन तीनों शब्दों से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने रूसो से थोड़ा आगे बढ़कर न्याय की बात और कही। वे इंग्लैंड के राजनीतिक दार्शनिक लॉक से भी बहुत अधिक प्रभावित थे।

जब हमारे देश के नेता राजनैतिक स्वतंत्रता की मांग कर रहे थे तो डा. आम्बेडकर राजनैतिक स्वतंत्रता से पहले आर्थिक-सामाजिक समता व सामाजिक न्याय की वकालत कर रहे थे। वे हमारे देश की सामन्तवादी, ब्राह्मणवादी व जमींदारी प्रथा के विरुद्ध थे। उन्होंने हमारे देश में व्याप्त अस्पृश्यता, जातिवाद, साम्प्रदायिकता व ब्राह्मणवाद के विरुद्ध जेहाद छेड़ा। महाड तालाब सत्याग्रह करके कथित अस्पृश्यों को पानी पिलाया व एक लम्बा आन्दोलन चलाकर नासिक के कालाराम मंदिर में प्रवेश कराया।

डा. आम्बेडकर इन सब सामाजिक बुराइयों की जड़ हिन्दुओं की वर्ण व्यवस्था को मानते थे। महाड सत्याग्रह के समय दिनांक 25-12-1927 को डा. आम्बेडकर ने कहा था "वर्ण व्यवस्था सभी असमानताओं की जड़ है। समानता का अर्थ है सभी को समान अवसर मिलें और प्रतिभा को ही प्रोत्साहन दिया जाये। हिन्दू समाज का गठन दो सिद्धांतों पर किया जाये—समानता व जातिविहीनता।"

डा. आम्बेडकर का लक्ष्य सदियों से पीड़ित, शोषित, उपेक्षित व सतायी मानवता को शोषण से मुक्ति दिलाना था। वे चाहते थे कि देश को स्वतंत्रता मिलने से पहले दलित वर्ग को जमींदारों के अत्याचारों से मुक्ति मिले। मानव मूल्य उनके लिए सबसे बढ़कर थे। उनके अनुसार रोटी ही मनुष्य के लिए सब कुछ नहीं है। मानव के पास मन है, वह सोचता है और अच्छे-बुरे की पहचान करता है। उसे स्वाभिमान व मान-सम्मान चाहिए। मनुष्य का यह जन्म सिद्ध अधिकार है कि वह सम्मानपूर्वक जीवन यापन करे। वह दासता का अन्त कानून की सहायता से करना चाहते थे। उनके अनुसार कानून के अलावा सामाजिक शक्ति का जीवन सिद्धान्तों के निरूपण और उनकी स्थापना में गहरा हाथ है।

डा. आम्बेडकर ब्राह्मणों के विरुद्ध न होकर ब्राह्मणवाद के विरुद्ध थे और कहते थे, "हरिजनों को खतरा ब्राह्मणों से नहीं बल्कि कृषि पर आधिपत्य जमाये हुई जातियों से है।" सामाजिक न्याय तथा एकता को वे राजनीति से अधिक महत्ता देते थे और कहते थे राजनैतिक एकता को कायम रखने के लिए सामाजिक एकता या भाई-चारे की भावना का होना आवश्यक है।

कार्ल मार्क्स के अनुसार, "धर्म अफीम के समान है जिसे खाकर मनुष्य अपनी सुध-बुध खो बैठता है" लेकिन डा. आम्बेडकर धर्म को समाज का आवश्यक अंग मानते थे। यहां उनके विचार गांधीजी से मिलते हैं। डा. आम्बेडकर के अनुसार "किसी भी धर्म को जीवित रखना है तो उसकी सामाजिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसमें असमानता, भेदभाव व

अन्याय की गुंजाइश न हो।" वह सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक समस्याओं का हल नैतिक शक्ति व प्रजातांत्रिक तरीकों से करना चाहते थे। वे साम्यवादियों के तौर तरीकों से प्रसन्न नहीं थे। उन्होंने दलित वर्ग को भारत भूमि के प्राचीन बौद्ध धर्म को ही अपनाने की सलाह दी।

डा. आम्बेडकर का विचार था कि समाज के सभी वर्गों का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों में समान स्थान हो तथा उन्हें जीवन में ऊपर उठने के अवसर दिए जाएं जिससे उनकी प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो सके। उनके अनुसार समाज को समस्याएं उलझानी नहीं सुलझानी चाहिए। इसके लिए वे सामाजिक चेतना पर जोर देते थे। वे स्थायित्व के महत्व को मानते थे किन्तु परिवर्तन की बलि चढ़ाकर नहीं। वे चाहते थे कि समाज में समन्वय और समझौता जरूर हो परन्तु इसके लिए सामाजिक न्याय का गला नहीं घोटा जाना चाहिए।

सामाजिक असमानता के लिए डा. आम्बेडकर केवल सवर्ण हिन्दुओं को ही दोषी नहीं मानते थे बल्कि उसके लिए कुछ हद तक कथित अछूत भी उत्तरदायी थे। उनके विचार में कथित अछूतों को ऊंचा उठने के लिए स्वयं भी इस दिशा में प्रयत्न करने होंगे। जनवरी 1936 में उन्होंने महाराष्ट्र अछूत युवा सम्मेलन में कहा था, "धर्मपरिवर्तन का यह मतलब नहीं कि वे रातों-रात नर्क की मिट्टी से निकल कर स्वर्ग की फुलवाड़ी में पहुंच जायेंगे। उन्हें समानता और स्वतंत्रता के लिए सतत् संघर्ष करना पड़ेगा।"

डा. आम्बेडकर चाहते थे कि देश को स्वतंत्रता मिलने से पहले दलित जातियों को सवर्ण के अत्याचारों, शोषण व अन्याय से मुक्ति दिलाई जाये। उन्होंने तो एक बार यहां तक कह दिया था "मैं अछूतों के महत्वपूर्ण हितों की बलि नहीं चढ़ने दूंगा चाहे देश को स्वतंत्रता मिले या न मिले।" वे राजनीतिक समानता से पहले आर्थिक व सामाजिक समानता चाहते थे। उन्होंने दलित वर्ग को समाज में उचित स्थान दिलाने की पूरी कोशिश की थी लेकिन देश की भलाई, एकता व अखंडता भी उनके लिए कम महत्वपूर्ण न थी। देश की स्वतंत्रता की कीमत पर समझौता कभी भी उनका उद्देश्य नहीं रहा। उन्होंने 'मैकडोनल्ड अवार्ड' के तहत हरिजनों को मिला अलग मताधिकार का दर्जा पूना समझौता करके छोड़ दिया था और देश को टूटने से बचाया था।

डा. आम्बेडकर के विचार प्रगतिवादी थे लेकिन इसके साथ ही वे हिंसा में विश्वास नहीं करते थे। सामाजिक सुधार, जागरुकता, न्याय व स्वतंत्रता के लिए वे प्रेस को एक सशक्त साधन मानते थे। यहां पर वे वाल्टेयर से प्रभावित हुए दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने 'मूकनायक', 'जनता', 'समता' और 'प्रबुद्ध भारत' नामक पत्रिकाएं निकालीं। लेकिन स्वतंत्र, विद्रोही व प्रगतिवादी विचारधारा होने के कारण उनकी पत्रिकाएं अधिक नहीं बिक पाती थीं। उन्होंने शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया और हरिजनों से कहा, "शिक्षित बनों, संगठित रहो, संघर्ष करो।"

डा. आम्बेडकर ने अपनी 'जाति उन्मूलन' नामक पुस्तक में लिखा है, "समाज सुधार का रास्ता भारत में किसी भी दृष्टि से स्वर्ग के रास्ते जैसा कठिनाइयों से भरा है। भारत में समाज सुधारक के मित्र कम और आलोचक अधिक हैं।....मेरे मत में इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब तक आप अपना सामाजिक ढर्रा नहीं बदलते, आप प्रगति के रूप में कुछ थोड़ा ही प्राप्त कर सकते हैं। आप समाज को प्रतिरक्षा अथवा आक्रमण के लिए तैयार नहीं कर सकते। आप जाति की नींव पर कुछ भी निर्माण नहीं कर सकते। आप राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते आप नैतिकता का निर्माण नहीं कर सकते। जाति की नींव पर आप जो कुछ भी निर्माण करेंगे उसमें दरारें आएंगी और वह कभी पूर्ण नहीं हो सकती।"

डा. आम्बेडकर के अनुसार अधिकार जन्म जात और वंशानुगत वरदान है। मानव को कुछ शाश्वत अधिकार प्राप्त हैं। सामाजिक शान्ति और जनता के विभिन्न वर्गों के बीच न्याय व्यवहार में कानून का बहुत बड़ा हाथ होता है। अधिकारों की रक्षा केवल कानूनों से नहीं हो सकती किन्तु समाज में नैतिक और सामाजिक चेतना की भी आवश्यकता होती है।

आज डा. आम्बेडकर हमारे बीच नहीं हैं। उनके विचार वाद-विवाद के विषय बने हुए हैं। उन्होंने अस्पृश्यता, जातिवाद जैसी अनेक बुराइयों का संवैधानिक तरीकों से समाधान करके शताब्दियों से शोषित-पीड़ित मूक बनी जनता को समानता, स्वतंत्रता, न्याय के जो अधिकार दिलाये उनको कभी भुलाया नहीं जा सकता। दलित वर्ग को स्वयं भी इस विषय में पहल करनी चाहिए। इनमें भी अनेक जातियां-उपजातियां हैं। आपस में रोटी-बेटी का नाता तो दूर की बात है एक दूसरे को आपस में चारपाई पर बैठाने को तैयार नहीं हैं। इनको बैसाखियों का सहारा छोड़ना होगा। जितने अत्याचार सवर्ण जातियां इन दलितों पर करती हैं उतना ही यह वर्ग आपस में एक-दूसरे पर करता रहता है। दलित वर्ग के लोगों को चाहिए कि वे शिक्षा प्राप्त करें, हीन भावना त्यागें, अपने पुश्तैनी धंधों को छोड़कर अन्य कार्यों में आयें और संगठित रहें और अस्पृश्यता व जातिवाद जैसी समाजिक बुराइयों को दूर करने में स्वयं भी पहल करें तभी डा. आम्बेडकर का स्वप्न पूरा हो सकेगा। □

युगदृष्टा : डा. आम्बेडकर

प्रो. लक्ष्मीनारायण दुबे

भारतीय संविधान के निर्माता के रूप में डा. आम्बेडकर अमरत्व प्राप्त कर चुके हैं। प्रस्तुत लेख में डा. आम्बेडकर की बहुआयामी प्रतिभा पर प्रकाश डाला गया है। उन्नीसवीं शताब्दी में ज्योति बा फूले ने समाजोत्थान के लिए जो कार्य किये उन्हीं की विकसित तथा संवर्द्धित शृंखला हमें डा. आम्बेडकर बीसवीं शताब्दी में मिलती है। डा. आम्बेडकर हिन्दी के भी प्रबल समर्थक थे। उनमें अभूतपूर्व दूरदर्शिता थी और अपने युग से वे काफी आगे थे।

डा. भीमराव आम्बेडकर आधुनिक भारत के निर्माता, युगदृष्टा, महान शिक्षाशास्त्री, समाज सुधारक और दलितोद्धार के मसीहा थे। वे भारतीय संविधान के निर्माता के रूप में चिर-स्मरणीय हैं। उनका जन्म सन् 1891 तथा देहांत सन् 1956 में हुआ। भारत सरकार ने उनकी जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में हाल ही में उनको मरणोपरांत 'भारत रत्न' की उपाधि से विभूषित किया है और उनके जन्मशती वर्ष को 'सामाजिक न्याय' वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है।

डा. आम्बेडकर बुन्देली माटी की विभूति डा. हरिसिंह गौड़ के परम मित्र तथा साथी थे। दोनों की ही बचपन की दरिद्रता, निःसाधन-स्थिति तथा व्यक्तित्व काफी मिलता-जुलता है। दोनों ने ही शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक कार्य किये। दोनों का ही कर्मठ, सक्रिय तथा स्व-निर्मित व्यक्तित्व था।

बाबा साहेब आम्बेडकर ने अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के उत्थान, विकास तथा समृद्धि के जो कार्य किए वे आज स्वर्णाक्षरों से लिखे जा रहे हैं। उनके पास दलित वर्ग का भोगा हुआ यथार्थ था। उन्नीसवीं शताब्दी में ज्योतिबा फुले ने समाजोत्थान के लिए जो कार्य किये, उनकी विकसित तथा सम्वर्द्धित शृंखला हमें डा. आम्बेडकर में बीसवीं शताब्दी में मिलता है। महाराष्ट्र में जो दलित साहित्य लिखा गया उसके मूल में भी डा. आम्बेडकर का प्रेरक व्यक्तित्व रहा है। वे संत कबीर तथा महात्मा फुले को अपना आदर्श मानते थे। उनकी आत्मकथा से हमें उनके जीवन की वास्तविकताओं से परिचित होने के अवसर मिलते हैं। युगनिर्माता डा. आम्बेडकर ने कड़ी तपस्या तथा साधना से, नियति, संकटों, अवरोधों, विरोधों तथा प्रवचनाओं का सामना करते हुए, अद्वितीय ज्ञान भण्डार तथा पाण्डित्य प्राप्त किया। अगाध मानवतावादी प्रज्ञा, असीम करुणा, अमोघ वक्तृता, धीरोदात्त नेतृत्व और असाधारण कृतित्व के द्वारा वे सर्वमान्य हुए और उनको युगदृष्टा का सम्मान मिला।

डा. आम्बेडकर को उनके प्रबुद्ध पिताजी से विरासत में अनुशासन तथा शिक्षा के पाठ मिले। उन्होंने फारसी तथा अंग्रेजी विषयों को लेकर बम्बई विश्वविद्यालय से 1913 में बी. ए. की उपाधि प्राप्त की। कोलम्बिया विश्वविद्यालय, अमेरिका में अट्ठारह-अट्ठारह घंटे पढ़कर, उन्होंने न केवल

एम. ए. की उपाधि ही प्राप्त की अपितु वे इस विश्वविद्यालय से प्रथम भारतीय पीएच. डी. उपाधि प्राप्तकर्ता के रूप में विख्यात हुए। वे इंग्लैंड तथा जर्मनी के विश्वविद्यलयों से भी अनेक उपाधियों से विभूषित हुए। डा. आम्बेडकर ने अपने प्राध्यापक तथा प्राचार्य जीवन का शुभारम्भ बम्बई से ही किया। वे शीलविहीन शिक्षा को मूल्यहीन मानते थे। उन्होंने 1924 से दलितों, बहिष्कृत तथा उपेक्षित निम्न वर्ग की मुक्ति हेतु स्वाभिमान, स्वावलम्बन तथा स्वोन्नति का दिव्य महामंत्र प्रदान किया और समाज तथा राष्ट्रहित में एक नये युग का प्रवर्तन किया। उन्होंने अन्त्यजों को यह पूर्ण अहसास कराया कि शिक्षा ही प्रगति का एक महान साधन, महत्वपूर्ण माध्यम और विशेष शस्त्र है। उन्होंने अपने विभिन्न प्रकाशनों यथा 'बहिष्कृत भारत', 'जनता', 'प्रबद्ध भारत' आदि के द्वारा उनको प्रखर तथा मुखर वाणी भी प्रदान की। उन्होंने श्रम मंत्री के रूप में महाराष्ट्र में तकनीकी शिक्षा हेतु अस्पृश्य विद्यार्थियों तथा दलित वर्ग के व्यक्तियों को विशेष अनुदान का प्रबंध किया। डा. आम्बेडकर ने आजीवन संघर्ष कर अनुसूचित जाति के छात्रों को आवश्यक सुख-सुविधाएं, शिक्षा संबंधी कंसेशन और छात्रवृत्तियां प्रदान करायीं। उन्होंने साऊथबरो समिति तथा सायमन आयोग से दो टूक बातें कहीं थीं कि अस्पृश्यों को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करने की अत्यंत आवश्यकता है। साथ ही साथ उनका सामाजिक दर्जा ऊपर उठाना भी सरकार का प्राथमिक एवं प्रधान कर्त्तव्य है। उनके द्वारा गोलमेज परिषद में प्रस्तुत दलित शिक्षण प्रसार संबंधी मंतव्य भी बड़े सुस्पष्ट हैं।

डा. आम्बेडकर हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने नागरी लिपि के सशक्त हिमायती के रूप में अपने व्यक्तित्व में श्रीवृद्धि की। वे प्रौढ़ शिक्षा तथा नारी शिक्षा के सबल उन्नायक एवं पुरस्कर्ता थे। वे ही महाराष्ट्र के मध्य में स्थित पिछड़े क्षेत्र मराठावाड़ा में एक स्वतंत्र विश्वविद्यालय की स्थापना के प्रथम सूत्रधार तथा स्वप्नदृष्टा बने थे।

डा. आम्बेडकर राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी के भी निकट सम्पर्क में आये। गांधीजी दलितोद्धार के वैतालिक थे। कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने अपनी द्वितीय शताब्दी के अवसर पर, उनको विशेष रूप से आमंत्रित किया था और डाक्टर आफ लिटरेचर की मानद उपाधि से विभूषित किया गया था।

डा. आम्बेडकर स्वतंत्र भारत में भारतीय संविधान के प्रारूप की निर्मात्री समिति के अध्यक्ष बने। बाद में उनको आधुनिक मनु की मान्यता मिली। वे भारत के प्रथम विधि मंत्री के रूप में प्रतिष्ठित हुए। जीवन की अंतिम बेला में उन्होंने अपने सहयोगियों तथा अनुयायियों सहित बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और नव बौद्ध का मार्ग प्रशस्त किया।

डा. आम्बेडकर अनेक विषयों, शास्त्रों तथा भाषाओं के ज्ञाता थे। वे ज्योतिष शास्त्र, चित्रकला, मूर्तिकला तथा स्थापत्य शास्त्र के परम ज्ञाता थे। उनका अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, फारसी, उर्दू, पंजाबी, गुजराती, पालि, हिन्दी तथा संस्कृत पर वैसा ही अधिकार था जैसा कि अपनी मातृभाषा मराठी पर। वे तबला तथा सारंगी-वादन में भी निपुण थे। उन्होंने आत्मचरित्र तथा उपन्यास लिखकर, साहित्यकारों में भी अपना स्थान बना लिया था। वे एक महान संगठनकर्ता तथा समाज शिल्पी थे। उनमें अभूतपूर्व दूरदर्शिता थी और वे अपने युग से काफी आगे थे। प्रगतिशीलता, वैज्ञानिकता तथा वैचारिकता के क्षेत्र में उन्होंने अपने को पितृ पुरुष बना लिया था।

इस आधुनिक सिद्धार्थ से हमारे भारत को जितना गौरव मिला—उतना ही उत्थान और प्रगति का नव स्वर भी। युगदृष्टा डा. आम्बेडकर चिर वंदनीय व्यक्ति हैं।

2-6, प्रोफेसर आवास, सागर विश्वविद्यालय
सागर-470003 (मध्य प्रदेश)

सार्थक दिवाली

विनय जोशी

दिवाली,
तुम फिर आ ली,
खुश करने को;
जल रही ये अपनी
दीप-शिखा
फिर ले आई हो—
तिमिर हरने को।
पर/पिछली बार
जो तुम आई थी
तब भी तुमने यही कहा था—
"अंधकार का अंत करूंगी।"
बार-बार मैंने भी सुना था।
किन्तु!
भाग गई तू,
दो दिन में ही
मुंह छिपाये, बिना बताए
शर्म के मारे
जाने किसमें—
पूरा अपना-आप लपेटे
सदा की भांति वर्ष बाद
तुम आ जाती हो
घिसे-पिटे आश्वासन भर के
भंगुर दीपों का ताज पहन
मुस्काती अपनी
असफलता पर शासन करके!
घबराती क्यों हो?

कह दो मुझसे—क्या चाहती हो
जीवन शक्ति चाहिए तुमको—
बस इतना चाहती हो!
तो/आओ न मेरे साथ ही तुम भी आ जाओ न!
गांव-गांव में घर आंगन में
अब चलते हैं;
साक्षर करें सभी को—
आओ प्रण करते हैं;
ज्ञान-दीप हम बनें
अमर यूं जीवन पाएं;
जीवन-शक्ति यही है इससे
तिमिर-भगाएं।
नेहरू जी का,—बापू जी का, और बलिदानों का सपना
देश हमारा—हमको प्यारा प्राणों से भी प्यारा
साक्षरता का रंग भरें—
हम इसे सजोए।
अमर रहेगी—नहीं मिटेगी
तब दिवाली
संग-संग जब गांव-गांव में
दीप जलाएं।

सरदारनी सदा कौर खालसा स्कूल,
दरियागंज, दिल्ली

सामाजिक न्याय-प्रयास और कमियां

भूपेन्द्र नाथ मिश्र

प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक का कहना है कि वर्तमान परिस्थितियां भारतीय समाज में जैसे—जातिवाद, क्षेत्रीयवाद आदि राष्ट्रीय एकता के अनुकूल नहीं है। इसका मुख्य कारण आर्थिक विषमता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी हमारी सरकार ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया, जो इन परिस्थितियों को अनुकूल बनाने में आड़े हाथों आई हैं। मूलरूप में इसका एक कारण समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार भी है। इससे हमारे जरूरत मन्द लोगों तक सरकार द्वारा जो लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं वह नहीं पहुंच पाते हैं। इसके लिए लेखक ने साक्षरता बढ़ाने पर अधिक जोर दिया है और ग्रामीण विकास में अधिक बजट की व्यवस्था किये जाने के सरकार के निर्णय को शुभ लक्षण माना है।

आजादी के 43 वर्षों के बाद, लगातार कोशिशों के साथ, सामाजिक न्याय के लिए प्रतिबद्ध रहने के बावजूद हम कितने कामयाब हुए हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। आज सामाजिक विषमता की खाइयां दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही हैं। आज पूरा देश क्रमशः गहराते जा रहे संकट के अभूतपूर्व दौर से गुजर रहा है। आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में व्याप्त यह संकट चौतरफा है। दमन और उत्पीड़न की रोज-ब-रोज नई मिसालें कायम की जा रही हैं, पूरा सामाजिक जीवन अभूतपूर्व विग्रह कलह से भर गया है। ऐसा लगता है कि राष्ट्रीयता की भावाना विलुप्त होकर पृष्ठभूमि में चली गयी है और राष्ट्रीय एकता और अखंडता को छिन्न-भिन्न कर देने वाली शक्तियां एकदम सतह पर आकर जोर अजमाइश कर रही हैं।

यद्यपि इनमें जातिवाद, क्षेत्रवाद और साम्प्रदायिक (धार्मिक) उन्माद, तीनों प्रवृत्तियां काम कर रही हैं। फिर भी परिणामी प्रवृत्ति के रूप में विघटनवाद, क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति सर्वोपरि दिखायी देती है। दिन-ब-दिन बनाये जा रहे तमाम संवैधानिक व्यवस्थाओं, आयोगों व कानूनों के बाद भी वर्ग संघर्ष, जाति संघर्ष का जो क्रूर तांडव समाचार माध्यमों की सुर्खियों में निरंतर स्थान बनाये हुए हैं, अवश्य ही चिन्तनीय व सोचनीय है।

यही नहीं आर्थिक दबाव इतना बढ़ता जा रहा है कि छोटे और मझोले किसान, मजदूरों की कतारों में शामिल होते जा रहे हैं और फिर भी उनकी रोजी-रोटी की कोई गारंटी नहीं होती। आम किसान औद्योगिक सामानों को बहुत ऊंची दरों पर

खरीदने और अपने उत्पादन सस्ते दामों पर बेचने के लिए विवश है, और अपने जीने के न्यूनतम साधन भी नहीं जुटा पा रहे हैं। आज भी देश की चौंसठ फीसदी आबादी अशिक्षित है। इस सदी के अंत तक दुनिया में सर्वाधिक अशिक्षित लोग भारत में होंगे जिनकी संख्या पचास करोड़ के आसपास होगी।

देश में बेरोजगारों की संख्या आज चार करोड़ से भी ऊपर पहुंच चुकी है। युवा-ऊर्जा का वह विराट पुंज जो अपनी सृजनात्मक क्षमता से मिट्टी को सोने में बदल सकता है, ज्ञान-विज्ञान के नये क्षितिज उद्घाटित कर सकता है और समाज विकास की नयी दिशा व गति दे सकता है उसका हमारे देश में कोई उपयोग नहीं हो पा रहा है। निराशा और दिशाहीनता के गहन अंधकार में नौजवान दिलों की तमाम आकांक्षाएं घुट-घुट कर दम तोड़ रही हैं।

जातिवाद दंगों में 1950 के बाद पांच गुने से भी अधिक की वृद्धि हुई है। अपने-अपने वोट बैंक सुरक्षित करने की होड़ में अधिकांश राजनैतिक पार्टियां जातिगत राजनीति को ज्यादा-से-ज्यादा हवा दे रही हैं। और यह सामाजिक विग्रह आज जैसा गंभीर रूप धारण कर चुका है, वैसा पहले कभी नहीं था। जाति समस्या पहले से ही भारतीय समाज की एक गंभीर समस्या रही है। आज इस समस्या ने पूरे समाज को भीषण आंतरिक संकट के कगार पर खड़ा कर दिया है।

इन सभी समस्याओं के मूल में अगर हम विश्लेषण करें तो पाते हैं कि, कहीं-न-कहीं सामाजिक विषमता जो कि सामाजिक असंतोष के रूप में उभरी है मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं। यद्यपि आजादी के बाद से ही सामाजिक न्याय दिलाने के प्रति हमारी सरकारें वचनबद्ध रही हैं। परन्तु दुर्भाग्य है कि अनेक लुभावने नारों के बावजूद भी अभी इस लक्ष्य की प्राप्ति से हम काफी दूर हैं। सामाजिक न्याय की दिशा में आजादी के बाद किये गये प्रयत्नों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—पहला भूमि सुधार तथा दूसरा कल्याणकारी योजनाओं का प्रादुर्भाव।

सामाजिक न्याय दिलाने के दृष्टिकोण से भूमि सुधार एक अनिवार्य एवं उपयोगी कदम रहा है। भूमि सुधार के अंतर्गत किये गये प्रयत्नों के पांच प्रमुख क्षेत्र हैं—(1) मध्यस्थों की समाप्ति, (2) काश्तकारी विधानों में सुधार, (3) जोतों की अधिकतम सीमा का निर्धारण, (4) आर्थिक जोतों का निर्माण तथा (5) भूमि पुनर्वितरण योजना। भूमि सुधार का प्रमुख उद्देश्य भूमि सम्बंधी पद्धति में पाये जाने वाले सभी शोषण तथा सामाजिक न्याय के सभी तत्वों को समाप्त करना था। परन्तु जिस तत्परता से ये कानून बनाये गये, उस तत्परता व ईमानदारी से ये लागू नहीं हो पाये हैं।

समाज के कमजोर वर्गों के विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम का सूत्रपात हुआ और अनेकानेक कल्याणकारी योजनाओं का शुभारम्भ किया गया जैसे अन्तोदय योजना, आई.आर.डी.पी., स्पेशल कम्पोनेंट प्लान आदि। इन योजनाओं की मदद से जितना ग्रामीण विकास अपेक्षित था, वह पूरा न हो सका। क्योंकि देश का हर वर्ग इस सच्चाई को स्वीकारता है कि योजनाओं का लाभ जिसे मिलना चाहिए उसे नहीं मिल पा रहा है। लोग इसके पीछे सरकारी मशीनरियों में व्याप्त भ्रष्टाचार को मूल कारण समझकर पूरी सच्चाई समझने की कोशिश नहीं करते हैं। यह सत्य है कि सरकारी मशीनरियों में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। लेकिन मेरा मत है कि इसका मूल कारण अशिक्षा और अपने अधिकारों की अज्ञानता व शोषण परस्त मानसिकता है जिसका फायदा ये मशीनरियां उठाती हैं। यदि लोगों को अपने अधिकारों के प्रति जागृत किया जाये तो ये योजनाएं ज्यादा लाभकारी सिद्ध होंगी। भ्रष्टाचार मिटाने का सबसे सशक्त अस्त्र अधिकारों के लिए लड़ने की प्रवृत्ति पैदा करना है।

वर्तमान सरकार सामाजिक न्याय दिलाने के प्रति अधिक ही प्रतिबद्ध लग रही है। इस दिशा में भूमि सुधार कानूनों को संविधान की अनुसूची में लाना, बजट का आधा हिस्सा गांवों में लगाना, शुभ लक्षण हैं। साथ-ही-साथ शहरी सम्पत्ति हदबन्दी का विचार इस दिशा में अवश्य ही सराहनीय कदम है। वर्तमान प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने लाल किले पर जो कहा है कि गरीबों को बजट में ही हिस्सा न दे कर बल्कि शासन तंत्र में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की जाये, वास्तव में सामाजिक न्याय की दिशा में यह एक ठोस कदम है। लेकिन इसकी कारगरता इस बात पर निर्भर करेगी कि वास्तव में यह कितनी ईमानदारी से प्रभावी होगा? कहीं इसका भी फायदा चन्द लोगों द्वारा ही न अतिक्रमित कर लिया जाये?

ग्राम व पत्रालय बनगाई,
गोंडा-271122 (उत्तर प्रदेश)

(आवरण II का शेष)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सुनियोजित आर्थिक विकास का रास्ता अपनाकर देश ने कई क्षेत्रों में प्रगति की है। कृषि और औद्योगिक उत्पादन अबाध गति से बढ़ा है किन्तु इसका लाभ उन करोड़ों शोषितों को अब तक नहीं मिल पा रहा है जिनके बलबूते और सहयोग से उत्पादनों को बढ़ावा मिला है। सच्चाई तो यह है कि उनकी झोपड़ियों में आजादी की रोशनी अब तक नहीं पहुंच पाई है। आज भी सामूहिक नरसंहार और बलात्कार की घटनाओं का शिकार सबसे ज्यादा वही हो रहे हैं। राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने उन दलितों को ऊपर उठाने का बीड़ा उठाया है और यही कारण है कि उसने बाबा साहेब की जन्म शताब्दी को 'सामाजिक न्याय वर्ष' के रूप में मनाने का फैसला लिया है।

आरक्षण के संवैधानिक प्रावधान के होते हुए भी उन गरीबों को अब तक उनका हक नहीं मिल सका है। सत्ता और प्रशासन पर वर्चस्व बनाए रखने वाले प्रतिभा की आड़ में उनके हितों पर कुठराघात कर रहे हैं। सरकारी और सार्वजनिक नौकरियों में उनके लिए आरक्षित जगहें या तो खाली पड़ी हुई हैं अथवा उनकी जगह गैर-आदिवासी या गैर-हरिजन को नियुक्त कर लिया गया है। सरकार ने यह निर्देश दे रखा है कि 'सामाजिक न्याय वर्ष' के अन्दर सभी आरक्षित जगहें भरी जायें और उनके निर्देश का कड़ाई के साथ पालन किया जाए। सारे देश में श्रमिक न्यायालयों का गठन कर उनके हितों पर हो रहे हमले को रोका जाये। उसके लिए संसद सदस्य श्री रामधन की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन भी हो गया है जो अपना काम शुरू कर चुका है। निम्नतम मजदूरी कानूनों का पालन कड़ाई से किया जायेगा और बेरोजगारों को रोजगार मुहैया करने की व्यवस्था की जा रही है। गांव में अकुशल मजदूरों के लिए जवाहर रोजगार योजना के साथ-साथ ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम को सारे देश में लागू करने की घोषणा-की जा चुकी है। इंदिरा आवास योजना में जहां-तहां उनके रहने के लिए घर बनाए जा रहे हैं। आदिवासी, हरिजनों एवं अन्य बन्धुआ मजदूरों के पास जो भी थोड़ी जमीन उपलब्ध है अथवा जो जमीन सरकार की ओर से उन्हें दी जा रही है उसे उपजाऊ बनाने की दिशा में 'मिलियन वेल्स योजना' के अन्तर्गत उसमें सिंचाई की व्यवस्था की जा रही है ताकि उत्पादन बढ़ाकर वे अपनी आमदनी में वृद्धि कर सकें। समग्र ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के तहत गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले को बैंक के माध्यम से 50 प्रतिशत अनुदान देकर प्रत्येक बेरोजगार को पांच हजार रुपयों तक का कर्जा दिया जा रहा है। पहले आदिवासियों को मिलने वाली यह सुविधा हरिजनों को नहीं मिल रही थी किन्तु 'सामाजिक न्याय वर्ष' के चालू होते ही हरिजनों को भी यह सुविधा मिलने लगी है। देश को सबल बनाने, आपसी सद्भावना बढ़ाने, विषमता दूर करने और बाबा साहेब के सपनों को साकार करने के लिए 'सामाजिक न्याय वर्ष' के कार्यक्रमों को सफल बनाने में तन-मन-धन से जुट जाने की आवश्यकता है ताकि राष्ट्रीय एकता के नारे को सार्थक बनाया जा सके। □

आर एन. 708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN 708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादुर शाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित